महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(द्वितीय एवं तृतीय खण्ड)

पृष्ठ संख्या 101-200 तक

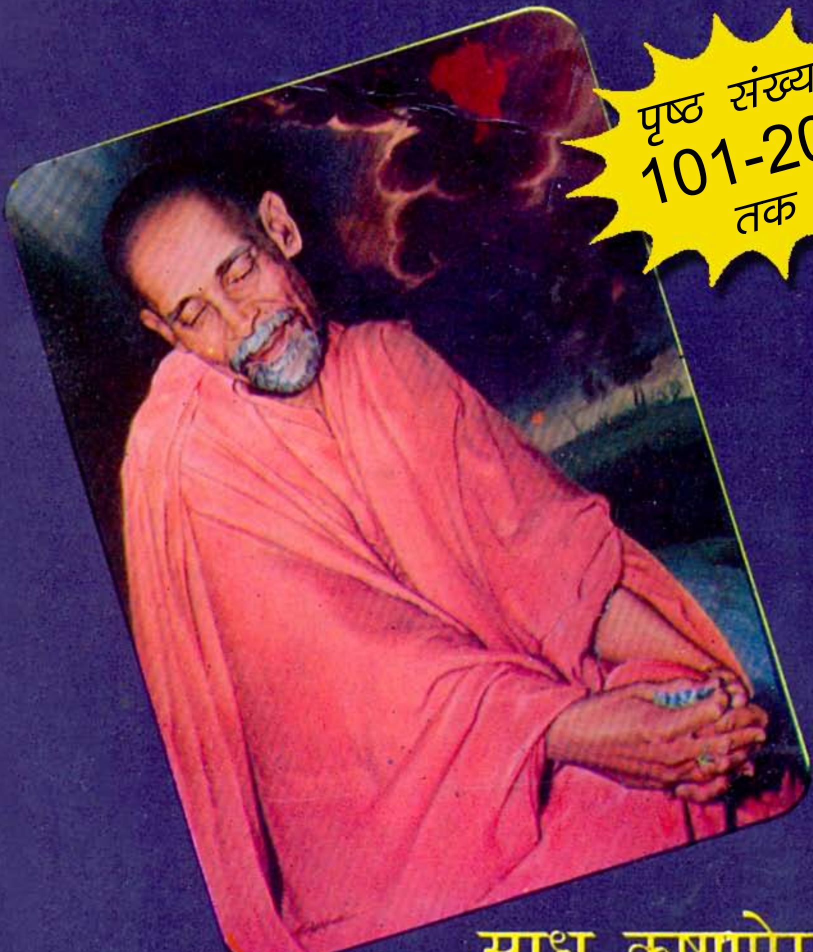

साधु कृष्णप्रेम

मनसे, वचनसे एवं दृष्टिसे जो कुछ ग्रहण होता है–सब भगवान् हैं

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

रह सकते । वहाँ भी उन्हें क्षणिक शान्ति ही मिलेगी। वृन्दावनकी चिदानन्दमयताका अनुभव उन्हें नहीं ही होगा । धामके वस्तुगुणसे अन्तमें उनका कल्याण हो जाय, यह बात दूसरी है ।

रास देखकर भगवद्भाव हो तो वह वस्तुतः भगवत्–प्राप्तिकी परमोच्च साधना होती है, पर आप नाराज न हों, आपका मन भगवान्‌की ओर नहीं लगता। वह लगता है वहाँकी सजावटपर । जिस मनमें कूड़ा (विषय) है, वह गंदा मन रासके भगवत्–स्वरूपोंमें ज्यादा दिन टिकेगा ही नहीं । रही वृन्दावनकी बात, सो वृन्दावन असलमें जड़ वस्तु नहीं है कि वह एक देशमें सीमित है, वह भगवान्‌का स्वरूप–तत्व है, सर्वव्यापक है । श्रीराधारानी–श्रीकृष्णकी कृपासे जिनकी वह दृष्टि हो जाती है, उन्हें अणु–अणुमें श्रीधामके दर्शन हो सकते हैं, होते हैं । भूलोकमें आप जिस वृन्दावनका दर्शन करते हैं, वह सर्वथा निस्संदेह सच्चिदानन्द विभुतत्व है; पर जिन्हें उस स्वरूपका अनुभव या उसपर श्रद्धा नहीं है, उन्हें वहाँ रहकर भी शान्ति नहीं ।

सच मानिये–कहीं भी जायँ, शान्ति तभी मिलेगी जब कि मनसे संसार निकलेगा । यह नियम ऐसा है कि कभी टलेगा नहीं । आपके प्रति जो मैं प्रार्थना करता हूँ, उसमें यह न समझें कि मैं कोई अपनी बात आप पर लादना चाहता हूँ। केवल इतनी बात आपसे निवेदन कर देता हूँ कि मेरी समझमें आपको संसार मनसे निकालना ही पड़ेगा । यह न करके चाहेंगे कि अशान्ति मिट जाय तो नहीं मिटेगी । अशान्ति तो संसारकी सत्ता मिटनेसे ही मिटेगी । आपके लिये यह एक बात जँच रही है कि आप पूरे निश्चयके साथ चौबीसों घंटे लीलाका श्रवण, चिन्तन, मनन–जब जैसा सम्भव हो, करते रहें । युक्ति मैं आपको बतला रहा हूँ, कुछ दिन करेंगे तो मेरा विश्वास है कि उन्नति होनी ही चाहिये । करनेपर चौबीस घंटे यह अनुभव होगा कि श्वासके साथ पावन वृन्दावनकी वायु मेरे हृदयमें प्रवेश कर रही है । फिर इतनी निश्चिन्तता आयेगी कि शरीर रहे या जाय, मैं तो वृन्दावनमें ही हूँ । साथ ही लीलाका चिन्तन जितनी देर कीजियेगा वह और भी आनन्द बढ़ायेगी, पर यह सब करनेसे होगा। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं आपके अन्तःकरणमें ही बैठे हैं । जब उनसे आपको शान्ति नहीं मिली, तब मुझ–जैसे मलिन मनवाले प्राणीकी बातसे कैसे शान्ति मिलेगी । शान्ति तो तभी मिलेगी जब कि या तो संसारके प्रत्येक अन्तःकरणमें आप श्रीकृष्णको देखें; पुत्र, स्त्री, माँ–ये सब–के–सब बिल्कुल उनके ही रूपमें दीखने लग जायँ । या इन सबको भूलकर पावन वृन्दावनमें मन इतना रम जाय कि बस, ये हैं कि नहीं, इसकी स्मृति भी मनमें न रहे ।

मनसे, वचनसे एवं दृष्टिसे जो कुछ ग्रहण होता है–सब भगवान् हैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

ये दो बातें जीवनमें उतरनी परम आवश्यक हैं । मृत्युके पूर्व यह स्थिति प्राप्त कर ली तो सब कुछ पा लिया, अन्यथा फिर एक बार अवसर चूकने पर कृपाकी लहर फिर कब आवेगी, कहा नहीं जा सकता । सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२३

भगवान्‌में सुखही सुख है

रतनगढ

दिनांक उल्लेख नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र यथा समय मिलगया था । मैं भाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) के साथ रतनगढ़के बाहर प्रवासमें था । प्रवासमें उत्तर लिखनेवालेकी समुचित व्यवस्था नहीं होनेसे पत्रोत्तर समय पर नहीं लिखाया जा सका ।

एक दिन श्रीभाईजीने सत्संगमें बहुत ही मर्मकी बात कही थी । एक विषयोंके लिये रोता है और एक भगवान्‌के लिये रोता है । जो विषयोंके लिये रोता है, उसके तो आदि–मध्य–अन्तमें दुःख–ही–दुःख हैं; क्योंकि विषयोंमें दुःख–ही–दुःख है और जो भगवान्‌के लिये रोता है, उसके आदि–मध्य–अन्तमें सुख–ही–सुख है; क्योंकि भगवान्‌में सुख–ही–सुख हैं । विषयीका मन रोते समय विषयमें तदाकार होता है । इसका अर्थ है कि उसका मन दुःखमें तदाकार होता है और भगवान्‌के लिये विरहमें रोनेवालेका मन भगवान्‌में तदाकार होता है । इसका अर्थ यह है कि उसका मन आत्यन्तिक सुखसे तदाकार हो रहा है ।

आपने अभी व्रज–प्रेमका साधन कदाचित् आरम्भ ही किया है । यह खाँड़ेकी धार है । ज्ञान और भक्ति दोनोंसे ही यह न्यारी चीज है । यह इतनी ऊँची चीज है कि इसके मार्गमें पैर रखकर चलनेपर संसारको छोड़ ही देना पड़ता है । पर आपका मन अभी संसारकी उन्नतिमें फँसना चाहता है, घर–गृहस्थीके झंझटमें आप कूद–कूदकर पड़ते हैं । मामूली–से–मामूली तुच्छ बातके लिये उखड़कर लोगोंसे चिढ जाते हैं तथा परिवार इतना प्यारा है कि इसके लिये आपको बुरा–भला करनेमें कोई ग्लानि नहीं होती । आप ही सोचें, श्रीकृष्ण–प्रेमके मार्गपर चलनेवालेका भला, यह ढंग हो सकता है ? देखें, चित्तकी बदमाशी नहीं छूटना एक बात है, तथा उसके लिये परवाह न होना दूसरी बात है । पर मेरी दृष्टिमें चाहे गलत हो, मुझे ऐसा लगता है कि अभी आपके मनमें यह पूरी लालसा ही नहीं है कि हमारा मन व्रजमें रमे; क्योंकि उसका लक्षण यह है कि मनके

भागनेपर, जैसे याद आया कि मन व्रजसे कहीं अन्यत्र गया है, बस, वैसे ही तीव्र व्याकुलता होगी और तुरंत आप उसे व्रजसे जोड़ देंगे; किंतु आप तो शायद जान-बूझकर व्रजप्रेमका चिन्तन छोड़कर दूसरा काम करते हैं । ऐसी स्थितिमें श्रीकृष्ण ही आपकी सहायता करें, मैं और क्या कहूँ ।

व्रजप्रेमी जितने हुए हैं; जितनोंका जीवन मैंने पढ़ा है, प्रायः सभी कहते हैं कि हमारी शक्ति नहीं है कि हम अपना सुधार करें और सचमुच ऐसा ही मानते हैं। पर सुधार न होनेके कारण वे दिन-रात रोते हैं; उनमें कड़ापन, खासकर संतोंके प्रति अकड़ किसीके भी जीवनमें नहीं मिलेगी । अभिमानको तो वे लोग जड़से ही छोड़ देते हैं । इस प्रेमके पीछे न जाने कितने करोड़पति भिखारी बनकर रोटीके सूखे टुकड़े माँगते मारे-मारे फिरे हैं । न तन पर वस्त्र है, न खानेको अन्न । परिवारसे छिपकर अपना जीवन भजनमें बिता चुके हैं । पर आपके जीवनमें अभी तक मुझे नहीं दीखता है कि आपमें व्रजभक्तोंकी निरभिमानता आ गयी है, रुपयेका महत्त्व कम हो गया है । रुपयेको आप धूलि समझते हों और मानको विष समझते हों-ऐसी बात मुझे अभी नहीं दीखती। उलटे मुझे तो यह दिखता है कि अभी आपके मनमें धन प्राप्त करनेकी चाह है । और यदि चालू रही तो मेरी समझमें आपका उद्धार तो हो सकता है, पाँच प्रकारकी मुक्ति भी आपको मिल सकती है; पर, यह ढंग रखकर, शास्त्रोंको, जो मैने पढे हैं, सुने हैं, उनके आधार पर कहता हूँ-आपको यह व्रजप्रेम प्राप्त हो जाना तो बड़ा ही कठिन दीखता है । व्रजप्रेम केवल उसीके लिये है, जो उसके पीछे अपना सबकुछ जलाकर भस्म कर डालनेकी इच्छा रखता हो । संस्कृतमें प्रेमके सिद्धान्तपर बड़े-बड़े सुन्दर ग्रन्थ हैं, इस मार्गके बड़े-बड़े आचार्य हुए हैं और उन्होंने इस व्रजप्रेमके मार्गको अलग छाँटकर बड़े विलक्षण ढंगसे समझाया है । उन्हें देखनेपर पता चलता है कि यह हँसी-खेल नहीं है, इसमें भीतरी मनसे अनन्त जन्मोंतक नरक तकमें सड़नेकी तैयारी जिसके मनमें होती है, वही बढ़ सकता है। वास्तवमें जो श्रीकृष्णप्रेम है, वह कुछ ऐसी दुर्लभ वस्तु है कि उसके लिये सर्वस्व त्याग करना ही पड़ता है, तुच्छ परिवार, धन-जनकी तो बात ही क्या है। शान्ति मिले, आनन्द मिले, हमें शान्ति नहीं मिलती, नहीं मिली-ये बातें जिसके मनमें हैं, उसके लिये व्रजप्रेमकी बात करना, कहना, सुनना तो मजाक उड़ानेकी तरह है।

नारायन घाटी कठिन जहाँ प्रेमको धाम ।
बिकल मूरछा सिसकिबो ये मगके विश्राम ।।

श्रीकृष्ण आपपर कृपा करें-और कुछ नहीं, केवल आपके मनमें किसी प्रकार इस संसारसे छूटनेकी लालसा जाग जाय और दीनता आ जाय, फिर काम बने,

नहीं तो यों संसारको पकड़े रहना और व्रजप्रेम पाना आजतक तो कहीं हुआ नहीं है ।

यह जो अशान्ति है और साधना नहीं बनती—इसमें हेतु यही है कि आपको संत एवं भगवान्‌पर श्रद्धा नहीं है । पापके संस्कार श्रद्धा होनेमें बाधक होते हैं। इसीलिये संत कहते हैं—'भजन करो, निरन्तर भजन करो ।' भजन करनेसे अन्तःकरणका मल मिट जायगा और मल मिटा कि बस, विक्षेप और आवरण तो बहुत ही आसान चीजें हैं । श्रीभाईजीने एक बार बड़े प्रेमसे कहा था—मनुष्यको केवल एक काम करना है; भजनके द्वारा मलका नाश कर देना; बिल्कुल इतना ही काम उसको करना पड़ेगा और यह काम उसे ही करना पड़ेगा । रहा विक्षेप अर्थात् मनकी चंचलता, इसे दूर कर देंगे संत तथा भगवान्‌ने जो पर्दा डाल रखा है, उसे हटाकर वे सामने आ जायँगे । यही आवरणभंग है।' दृष्टान्त दिया था—जैसे दर्पण है, उसपर चिकटा मल चढ़ा है, वह हिल रहा है और पर्दे लगे हैं। अब रगड़–रगड़कर साफ कर दो—बस, तुम्हारा इतना ही काम है। संत नीचे–ऊपर पेंच कसकर हिलना–भटकना नष्ट कर देंगे । भगवान् पर्दा हटा देंगे। बस, फिर मुख स्पष्ट दीखने लग जायगा । रगड़नेसे यदि परिश्रमका अनुभव हो तो साबुनसे धो दो । निरन्तर नामका जप सहज साबुन है । मनकी मलिनता ही भगवान्‌का आनन्द नहीं लेने देती । अभी आपने लीलाकी, तत्वकी इतनी बातें सुनीं; पर इनका आनन्द सबको एक समान नहीं मिला होगा । इसमें एकमात्र हेतु है मनकी मलिनताकी घनता । जिसका मल जितना अधिक घन है, उतना ही इन बातोंका आनन्द वह नहीं उठा सकेगा। नहीं तो, इतनी देरकी बातचीतमें श्रीकृष्णका नाम जितनी बार आया, जब–जब उनके गुणोंकी बात आयी और वृत्तिने उसे पकड़ा, उतनी–उतनी बार हृदय पिघलकर बहने–सा लगा होता । आप पद सुनते हैं—

'कृष्ण नाम जबते श्रवन सुन्यौं री आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री ।'

इसमें रत्तीभर भी अत्युक्ति नहीं, न यह निरी भावुकताकी बात है । बिल्कुल सत्य है । यही दशा श्रीगोपीजनोंकी श्रीकृष्णके नाम–रूप–गुणकी स्मृति–श्रवणसे हो जाती है ।

आन्तरिक प्रेमके चिन्ह बाह्य शरीरपर प्रकट हो जाते हैं और उनका शास्त्रोंमें विस्तारसे वर्णन है । आज भी सच्चे प्रेमियोंमें वे चिन्ह प्रकट होते हैं । एक रघुबाबा गोरखपुरमें थे। उनमें 'तनुता' का प्रकाश हुआ था । और भी कई प्रेमविकार उनके शरीरपर स्वयं भाईजीने समय–समयपर देखे । प्रेमपथकी बात

ही निराली है । साध्य–साधन एकमात्र श्रीकृष्ण होंगे, वहाँसे पथ शुरू होगा । अभी तो जड़ 'शरीरका आराम' और 'नामका मोह' पग–पगपर पछाड़ रहा है ।

प्रेम उत्पन्न होनेपर बिल्कुल –'रही न काहू कामकी'–सी दशा भीतर–भीतर हो जायगी, संसारमें कोई भी आकर्षण आपके लिये नहीं रहेगा । इसकी साधना अपने–आप होती है । अपने–आप परिवारसे, धनसे सभी प्राणियोंसे मोह हटकर दृष्टि निरन्तर श्रीकृष्णकी ओर लग जाती है । केवल श्रीकृष्ण–चर्चा, केवल श्रीकृष्ण–भजन ही जीवनका उद्देश्य नहीं, स्वभाव हो जाता है । प्रेमकी इतनी पवित्र अवस्था प्रारम्भमें ही होती है कि उसमें किसी प्रकारका स्वार्थ, किसी प्रकारका आकर्षण (प्रेमास्पदके अतिरिक्त और किसीके प्रति) रहता ही नहीं । इसकी प्रारम्भिक साधना है––

पर्वतकी तरह दृढ़ निश्चय लेकर मनसे श्रीकृष्णका स्मरण, जीभसे भजन, कानोंसे श्रवण एवं निरन्तर सजातीय वासना–विशिष्ट सत्संगमें जीवन–यापन।

महाप्रभुने पाँच उपाय बतलाये हैं––

(१) निरन्तर नाम–जप, (२) सजातीय वासनाविशिष्ट सत्संग, (३) श्रीमद्भागवतका आस्वाद, (४) श्रीविग्रहसेवा, (५) श्रीव्रजवास ।

श्रीरूपगोस्वामीने लिखा है कि ये पाँचों इतनी विलक्षण शक्ति सम्पन्न साधनाएँ हैं कि कल्पनातीत शीघ्रतासे भाव, जो प्रेमकी पूर्वकी अवस्था है और जिसका एक नाम 'रति' भी है, उत्पन्न हो जाता है । पर 'सद्धियाम्' इसकी टीका की गयी है–'अपराधविहीनानाम्'। अर्थात् जो भगवत्सेवापराध एवं नामापराधसे रहित हैं, उनमें इस साधनासे एक क्षणमें ही भाव उत्पन्न हो जाता है, अपराधयुक्त प्राणीमें नहीं।

जैसे लकडीके दो टुकड़े हैं । उन दोनोंमें अग्नि तो पर्याप्त है। न विश्वास हो तो रगड़कर देख लें, उसमेंसे आग निकलेगी । इसी प्रकार भगवान् प्रत्येक प्राणीमें बाहर–भीतर, नीचे–ऊपर व्याप्त हैं । अब जैसे आग कहीं प्रकट हो जाय और प्रकट होकर किसी लकड़ीके खण्डको पकड़ ले तो फिर लकड़ी उसी आगमें जलकर स्वयं आग बन जाती है । जहाँ अग्निका संयोग हुआ कि वह लकड़ी फिर लकड़ी रह ही नहीं सकती । वह निश्चय–निश्चय आग बन जाती है। ठीक इसी प्रकार, जिस समय भगवान्का वास्तविक साक्षात्कार संतको होता है, उसी क्षण वह भगवान्में मिल जाता है। ठीक भगवान्के रूपका बनकर ही वह तब भगवान्का अनुभव करता है । उसे किसी भी दृष्टान्तसे समझाया नहीं जा सकता; क्योंकि सभी दृष्टान्त जड़–जगत्के हैं और संत एवं भगवान्के मिलनकी बात चिन्मय जगत्की है । पर यदि इस दृष्टान्तको कोई ध्यानमें रखें तो वह

भगवान्‌में सुखही सुख है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

कुछ–कुछ कल्पना कर सकता है । भगवान् हैं तो प्रत्येक प्राणीमें, पर कहाँपर किसी कारण से (प्रेमकी रगड़से) प्रकट हुए और प्रकट होते ही उन्होंने अपने आधारको अर्थात् जिसके लिये जिसमें प्रकट हुए थे उसे बिल्कुल पूरा–पूरा अपने समान बना लिया । जलनेके बाद जिस तरह काठ बिल्कुल काठ न रहकर अग्नि हो जाता है, ठीक वैसे ही संत देखनेमें तो मामूली मनुष्यकी तरह खाता–पीता, व्यवहार करता है, हँसता–रोता है, संन्यासी न हो तो घर–गृहस्थी भी करता है; परंतु वस्तुतः वह भगवान्‌की ही एक लीला है, जिससे वे अपनेको छिपाये रहते हैं। प्रश्न यह होता है कि फिर उस शरीरको भगवान् रखते क्यों हैं ? रखते हैं इसीलिये कि उसके स्पर्शमें आकर कुछ और भी प्राणी उस आगमें जलकर उसीकी तरह बंन जायँ, इसीलिये प्रारब्धकी लीलाका निर्वाह होता है ।

शास्त्र पढ़नेसे तो अनेक प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि सच्चे भगवत्प्राप्त संत भगवान्‌से अभिन्न हो जाते हैं । युक्तियोंके द्वारा भी मनुष्य इसे समझ सकता है । पर वही समझेगा कि जिसने जीवनका एकमात्र उद्देश्य बनाया है कि 'मुझे प्रभुसे मिलना है ।' फिर होता क्या है कि संत स्वयं अपनी गरमी–अपना तेज उसे प्रकट करके दिखलाना शुरू कर देते हैं । उनके तेजका असर तो सबपर होता है, पर बीचमें अहंकार, संसारकी वासना, विषय–सुखकी चाह, उनसे लौकिक स्वार्थपूर्तिकी वासना–ये सब खड़े होकर उनके तेजको देरसे ग्रहण होने देते हैं । जिस दिन जीवनका उद्देश्य एकमात्र भगवान् हो जाते हैं, उस दिन ये सब व्यवधान झड़ जाते हैं, साधक इनको फेंककर अकिंचन बन जाता है।

फिर जहाँपर संत दीखते हैं, उस स्थानपर श्रीकृष्ण दीखें–इसमें तो कहना ही क्या है, उसकी दृष्टिमें सर्वत्र एक श्रीकृष्ण ही रह जाते हैं और वह दिव्य पावन आनन्दके समुद्रमें डूब जाता है । जबतक यह हो, तबतक शास्त्र आज्ञा देते हैं कि 'चाहे किसी भावसे हो, सम्बन्ध जोड़े रहो।' भगवान्‌की करुणा जैसे अहैतुकरूपसे भगवान्‌में रहती है, सन्त रूप भगवान्‌की मूर्तिमें भी वह करुणा वैसे ही रहती है और वह करुणा किसी दिन एक क्षणमें तुम्हारे व्यवधानको दूर कर देगी । अवश्य ही अलग हटोगे तो भी निस्तार तो होगा ही; क्योंकि एक बारका सम्बन्ध ही निस्तारके लिये पर्याप्त है । पर कुछ देर लगेगी; क्योंकि आखिर नियमसे सब होता है । कोई कहे कि संत अपने–आपको प्रकट करके जीवोंका उद्धार क्यों नहीं करते तो उसका उत्तर यह है कि, यदि इसमें लाभ होता तो आप ठीक समझें; वे प्रकट होकर नाचते । जिस समय प्रकट होनेसे लाभ होता है, उस समय प्रकट भी होते हैं–हुए हैं । पूर्वकालमें महाप्रभु चैतन्यदेव प्रकट हुए थे और खुलेआम प्रेमका वितरण उन्होंने किया था । उस दिन पेटमें प्रेमकी भूख थी । आज तो

भगवान्में सुखही सुख है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

जगत्के प्राणी चाहते हैं–हमको धन मिले, मान मिले । यह देना उन्हें अभीष्ट है नहीं । अधिकांश जगत्का वातावरण आज इसी कामनासे कलुषित हो रहा है । फिर इससे भी ऊपरकी एक बात यह है कि भगवान् कब कौन–सा ढंग स्वीकार करते हैं–इसका रहस्य यदि हम समझ जायँ तो फिर भगवान् भी हमारी तरह मामूली ही सिद्ध हों, उनकी भगवत्ता ही क्या रह जाय । अतः शास्त्र एवं संत स्वयं कहते हैं कि चाहे उनकी कोई चेष्टा ऐसी हो कि जिससे जगत्को कम लाभ होता हुआ दीखे; पर निश्चय–निश्चय मान लीजिये कि इसी चेष्टासे इस समय अधिक लाभ होगा। यदि न होता तो वे वैसी चेष्टा करते ही नहीं; क्योंकि उनमें भ्रम–प्रमादकी गुंजाइश ही नहीं है । इसपर विश्वास करवा देना बड़ा कठिन है; पर बात बिल्कुल सत्य है–शास्त्रकी है, मेरी नहीं । उन ऋषियोंकी बात है, जिनकी बातें त्रिकाल–सत्य हैं ।

बिल्कुल उनकी कृपासे ही कोई उन्हें जान सकता है । मुझ–जैसे मलिन प्राणी तो संत एवं भगवान्के तत्त्वकी वास्तविक कल्पना भी नहीं कर सकते। बंगालकी बात है–हालकी ही । एक माई थी–विधवा हो गयी, पर भगवान्में उसका वात्सल्य भाव हो गया । फिर गोपालको पुत्र मानकर उसने तीस वर्षतक उपासना की । प्रतिदिन गोपालकी भावनासे भोजन कराया करती थी । अब गोपालको दया आ गयी । एक दिन आये और सचमुच खाने लग गये । पर आधा खाकर ही भाग गये । वह तो प्रेमसे पगली हो गयी । 'गोपाल', 'गोपाल' चिल्लाती हुई मारी–मारी फिरती । उन्हीं दिनों रामकृष्ण परमहंस नामके कलकत्तेमें एक बहुत बड़े महात्मा हुए थे । कुछ लोग उन्हींके पास जा रहे थे । लोगोंने उस माईसे कहा–'चल, बुढ़िया ! गोपाल वहाँ मिलेंगे।' यह तो पगली थी ही, थोड़ा चावल और नमक बाँध लिया कि गोपाल मिलेगा तो खिलाऊँगी । वहाँ पहुँची । लोगोंकी भीड़ थी । परमहंस उपदेश कर रहे थे । तरह–तरहके उपहार, मिठाई, फल आदि लोग लाये थे । सब सामने रखा हुआ था । बुढिया गयी। परमहंसको देखते ही बिल्कुल शान्त हो गयी । परमहंसने उपदेश बंद कर दिया । बोले–'मैया, मैं तो खिचड़ी खाऊँगा ।' खिचड़ी बनी । बुढ़ियाको होश हो गया था । वह सोचने लगी कि 'मैं पगली हो गयी थी। ये महात्मा हैं, इनकी कृपासे अच्छी हो गयी हूँ ।' इसको आज्ञा हुई–लोगोंने देखा बुढ़ियाका अहोभाग्य है । बुढ़िया लजा गयी, पर लोगोंने कहा–'परमहंस तुम्हारी खिचड़ी खाना चाहते हैं ।' परमहंस रामकृष्ण भी पागलकी तरह रहते थे । बुढ़ियाने खिचड़ी बनायी। पर संकोच था, केवल नमक–चावलकी खिचड़ी महात्माको कैसे खिलाऊँ । रामकृष्ण सभामण्डपसे उछले तथा कूदते–फाँदते वहाँ पहुँचे । 'मैया ! खिला, भूख लगी

है ।' रामकृष्ण बैठ गये; बुढ़ियाने परोस दिया । परोसते ही रामकृष्ण गोपालके रूपमें हो गये। बुढ़िया फिर गोपाल, प्यारा गोपाल–कहकर चिल्लाने लगी । उस दिनसे बुढिया एवं गोपालका सम्बन्ध नित्य हो गया । कहनेका मतलब यह है कि एक नहीं–ऐसी कितनी घटनाएँ प्रत्यक्षमें होती हैं कि जिनसे संत एवं भगवान् बिल्कुल अभिन्न हैं – यह तो सिद्ध हो जाता है, साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि ग्राहक नहीं हैं, इसीलिये संत उस रूपमें प्रकट नहीं होते । ऐसे–ऐसे संत हुए हैं कि जिन्होंने केवल एक दृष्टि डालकर मलिन–से–मलिन प्राणीमें उसी क्षण प्रेमका संचार कर दिया है ।

एक बात और समझ लेनेकी है । संत एवं भगवान्‌में भेद न होनेपर भी जो प्रेमी संत होते हैं, उनमें 'प्रेमी एवं प्रेमास्पद' ये दो भाव रहते हैं ।

जिस प्रकार राधारानी एवं श्रीकृष्ण तत्त्वतः एक हैं, पर फिर भी दोनों दो बने रहते हैं उसी प्रकार प्रेमी संत भगवान्‌से अभिन्न होते हुए भी पृथक् बने रहते हैं और जैसे राधारानीको प्रसन्न करनेका गुर श्रीकृष्णकी सेवा और श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेका गुर राधारानीकी सेवा है, वैसे ही भक्त और भगवान्‌का भी जोड़ा है ।

या तो संतकी अनुभूति सर्वथा मिटा दीजिये और उसकी जगहपर भगवान्‌की ऊँची–से–ऊँची कल्पना जो आपके मनमें हो, उसके अनुसार, उसी भगवत्–सत्ताको अभिव्यक्त देखिये; अथवा भगवान्‌को भी भूलकर सर्वथा एकाग्रचित्तसे एकमात्र यही उद्देश्य बना लीजिये कि संतके चरणारविन्दमें कैसे प्रेम हो । दोनोंका फल एक ही होगा । दोनोंको एक साथ लेकर चल सकें, तो भी एक बात है । पर इन दोनों बातोंके अतिरिक्त जो चीज है–वह व्यवधान है, उसे हटा दीजिये । विषयासक्ति, लौकिक स्वार्थ, पारिवारिक मोह–ये व्यवधान हैं । जितनी श्रद्धा है, काफी है । यह नियम है कि वस्तुतः संत यदि कोई हो तो उसमें श्रद्धाकी जरूरत नहीं है; उसकी ओर तो उन्मुख होनेकी जरूरत है । श्रद्धासे तो पत्थरकी मूर्ति भी कल्याण कर देती है । श्रद्धा न हो और फिर ऊँची–से–ऊँची चीज मिल जाय, यही महापुरुषकी विशेषता है । यहाँ फैसला श्रद्धाके तारतम्यसे नहीं होता, उन्मुखताके तारतम्यसे होता है । यही उन्मुखताका तारतम्य ही पारमार्थिक स्थितिके ऊँचे–नीचे स्तरकी प्राप्तिमें हेतु हो जाता है । यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि आप संतके वास्तविक स्वरूपको जानें, बिना जाने सर्वथा अंधकारमें ही रहकर यदि अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दें तो स्थिति आपको वही मिलेगी, जो जाननेवालोंको मिलेगी । जाननेवालेको कुछ विशेष मिले, यह बात नहीं है; उन्मुख कौन अधिक है–इस बातपर ही स्थिति निर्भर है । कोई भी हो; वह कितनी मात्रामें अपने आपको

मिटाकर उसकी जगह संतको बैठा देनेके लिये तैयार है–यह प्रश्न है । फिर वहाँ जो वास्तविक अभिव्यक्ति अचिन्त्यशक्ति है, भगवत्–सत्ता है, वह उसको उस मात्रामें अपना लेगी । इसलिये उपर्युक्त दो बातोंमें एक बात कीजिये–मेरे कहनेसे नहीं, सर्वथा शास्त्रीय प्रमाणको देखकर। 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' – सूत्रको रटकर संतके ढाँचेकी जगह भगवान्को देखिये । अथवा 'हे संत, हे संत, हे संत–' यह रट लगाकर बस, सर्वथा ' अनन्यममता विष्णौ' की जगह 'अनन्यममता संतचरणेषु' – कर लें । सच मानिये, एक ही फल मिलेगा ।

मनुष्यका स्वाभाविक हृदय ऐश्वर्यप्रवण होता है और वह ज्यों–ज्यों आगे बढ़ेगा–मान लें, किसीने संतकी जगह सर्वथा भगवान्को देखकर चलना प्रारम्भ किया–त्यों–ही–त्यों स्वाभाविक ही उसके मनमें भगवत्–ऐश्वर्यका उदय होगा और वह सोचेगा कि ये सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं । पर इस सम्बन्धमें एक नियम याद रखना चाहिये, वह यह कि कल्याण–गुणताके अंशमें (अर्थात् जगत्–उद्धारकी क्रियाके संपादन रूप अंशमें} महापुरुषकी ज्यों–की–त्यों वही शक्ति है जो शक्ति **अवतारमें अभिव्यक्त होती है । परन्तु** ऐश्वर्यके प्रकाशकी शक्ति श्रद्धालुकी श्रद्धापर **निर्भर है । ऐश्वर्यका प्रकाश केवल उस श्रद्धालुके लिये ही** होगा कि जिसका **सर्वथा संशयहीन विश्वास, परिपूर्ण विश्वास संतमें एकमात्र भगवान्**के ही होनेका हो **चुका है; जिसके मनमें जरा भी संतपनेकी अनुभूति अलग अवशिष्ट** है, उसके लिये बेधड़क प्रकाश नहीं होगा । **हमलोगोंमेंसे ऐसा अभी कोई नहीं** है, जो किसी संतके प्रति सर्वथा इस श्रद्धाके स्तरपर पहुँचा हो अतः उसे यह ध्यानमें रखना चाहिये कि ऐश्वर्य–अंशमें भगवत्ताके प्रकाश अर्थात् सर्वज्ञता, सर्वसमर्थताकी अभिव्यक्तिकी ओरसे दृष्टि मोड़ ले । अन्यथा होगा यह कि उसकी श्रद्धाकी कमीके कारण इस शक्तिके प्रकाशमें उसे त्रुटि दीखेगी और वह फिर उधेड़–बुनमें पड़ेगा। इस भागवतीय नियमको याद रखना चाहिये । अवतारमें और भगवद्रूप संतमें, जो जीवभावको लिये हुए जन्मे थे और फिर भगवत्–सत्तामें विलीन हो गये– (दोनोंमें) अन्तर यही है कि जो अनादिसिद्ध भगवान्का अवतार है, उसमें तो दोनों शक्तियोंकी अभिव्यक्ति अर्थात् कल्याण–गुणता एवं ऐश्वर्यकी शक्तियोंकी अभिव्यक्ति बिना श्रद्धाके ही होती है । पर सर्वोच्च संतमें केवल कल्याणगुणता ही प्रकाशित होती है, ऐश्वर्य श्रद्धालुकी संशयहीन श्रद्धा होनेपर ही कहीं प्रकाशित होता है ।

काम करते समय जिस–किसी वस्तुपर दृष्टि जाय उसीमें एक बार श्रीश्यामसुन्दरकी उस मधुर छविको देखनेका अभ्यास कीजिये । साथ ही 'नाम' निरन्तर चलता रहे । छूटे, फिर पकड़ें, इस प्रकार अपनी जानमें ईमानदारीके साथ

भगवान्में सुखही सुख है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

जीभसे नाम एवं मनके द्वारा लीलाका या रूपका चिन्तन करनेकी पूरी चेष्टा करें । फिर यदि एक पाई भी सफलता न हो तो कोई आपत्ति नहीं, बिल्कुल आपत्ति नहीं । साधना न हो तो दोषकी बात बिल्कुल नहीं है, पर उसके लिये मनमें महत्त्व न होकर उसे छोड़ देना दोष है । मान लें–समस्त जीवन चेष्टा करते रह गये, न वृत्ति सुधरी, न भाव हुआ, न विश्वास, यहाँतक कि रूपकी मामूली धारणाकर मन एक सेकंडके लिये भी स्थिर नहीं हुआ । पर यह लालसा लगी रही और बार–बार करते ही गये तो फिर मैं तो संशयहीन होकर ही यह कहता हूँ कि आपको ठीक वही चीज भगवान् देंगे, जो सर्वथा साधनाकी परिपक्व अवस्थामें ऊँचे साधकोंको मिलती है । ध्यान करते समय कोई चित्र नहीं बँधता, तो घबराइये मत । कभी वृन्दावनमें गये ही हैं । वहाँका सर्वोत्तम दृश्य, जो आपके मनमें हो उसको, उन पेड़–पत्तोंकी धुँधली–सी स्मृति मानस–पटलपर क्या नहीं ला सकते ? मैं ठीक कहता हूँ–मस्तिष्क यदि पागल हो जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा निश्चय ला सकते हैं । प्रतिदिन नियमसे एक बार ही स्मरण कीजिये, पर कीजिये अवश्य । फिर देखेंगे वह एक बारकी स्मृति–उन वृक्षोंकी स्मृति ही आगे चलकर अनन्तगुनी हो जायगी तथा मरते समय यदि उन लता आदिकी ही कोई धुँधली–सी स्मृति हो गयी तो निश्चय समझें, आप निहाल हो गये । व्रजमें लता बनेंगे और स्वयं राधारानी एवं श्रीकृष्ण उस लतारूप, सच्चिदानन्दमय लतारूप आपके समीप आकर अपने हाथोंसे फूल तोड़ेंगे तथा आप चाहें तो उसी क्षण अपने इच्छानुसार रूप धारण करके उनकी सेवा कर सकते हैं, ब्रजकी लताका ध्यान करके लता बननेवाला ब्रह्मप्राप्त पुरुषसे कम नहीं है । यह भावुकताकी बात हो, ऐसी बात नहीं है । अवश्य ही इस सिद्धान्तको श्रीकृष्णकी अतिशय कृपासे ही आप समझेंगे और विश्वास कर सकेंगे ।

स्वयं तो पहले तत्त्वतः श्रीकृष्ण बनकर ही तब व्रजकी लता बनेंगे, क्योंकि श्रीकृष्णके व्रजकी लता स्वरूपतः जड़ वस्तु नहीं है, वह सच्चिदानन्दमय है । सोचिये, श्रीकृष्णकी कितनी कृपा है – बिना उस दिव्य लताको देखे ही प्राकृत धारणामें आयी हुई लताका आप ध्यान करते हैं, पर वे इसीको अपना ध्यान मान लेते हैं, इसीको निमित्त बनाकर वे आपको सर्वोच्च स्थिति प्रदान कर देते हैं ! आपसे क्या लता, पेड़, पत्ते, मिट्टीके घड़े, पीतलके कलसेका भी ध्यान नहीं हो सकता ? और मजा यह है कि इनमेंसे किसीका व्रजभावसे भावित होकर ध्यान करनेपर बिल्कुल सच्चिदानन्दमय राज्यमें ही प्रवेशाधिकार मिल सकता है ।

संध्या–समय आपने देखा होगा, गायें वनसे लौटती हैं । ठीक उसी तरहका एक धुँधला चित्र व्रजभावसे भावित होकर इस समय अपने मानस–पटलपर

भगवान्में सुखही सुख है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

लाकर देखिये–गायें आ रही हैं, बस, श्रीकृष्ण मान लेंगे कि यह मेरा ध्यान कर रहा है ।

योगीके लिये मन लगाना, मन स्थिर करना कठिन है; क्योंकि उसे तन्मय करना है एक वस्तुमें । पर यहाँ तो गायसे मन उचटे तो पेड़में, पेड़से मन उचटा तो यमुनाके जलमें, वहाँसे मन उचटा तो वनकी पगडंडीमें, वहाँसे मन गया तो गोबरमें, धूलिमें (सब सच्चिदानन्दमय हैं) मन लगाकर कहीं– कुछ भी ध्यान करके कृतार्थ हो सकते हैं । क्या परिश्रम है ? केवल चाहकी कमी है ।

यहाँ बैठे–बैठे इस कलममें देखें, भावना करें–यह पेड़–सा दीखता है, वृन्दावनमें हरे पेड़ोंका रंग इससे कुछ भिन्न है । अब इस प्रकारके चिन्तनको ही श्रीकृष्ण अपना चिन्तन मान लेंगे और ठीक इसे निमित्त बनाकर मरते समय आपको सर्वोच्च स्थितिका दान कर देंगे । वे देखेंगे, अपनी जानमें इसने मनको मेरी प्यारी वस्तुओंमें लगाया है । गायें मुझे प्यारी हैं, वन मुझे प्यारे हैं, पेड़–लता मुझे प्यारे हैं – इसने मेरी प्यारी वस्तुओंका चिन्तन किया है । इसका तो मैं ऋणी हूँ । यह भी जाने दें; और कुछ न सही, एक बार कहिये–राधा–राधा । ये शब्द–भावुकताकी बात नहीं है – श्रीकृष्णको ऋणी बना देंगे :–

अनुल्लिख्यानन्तानपि सदापराधान् मधुपति–
र्महाप्रेमाविष्टस्तव परमदेयं विमृशति ।
तवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृतरसं
महिम्नः कः सीमां स्पृशति तव दास्यैकमनसाम् ।।

आपकी समस्त अशान्ति एक क्षणमें दूर हो जायगी । आप केवल व्रज–लीलामें मनको थोड़ा–सा भी ले जानेका अभ्यास डाल लें, यद्यपि यह है सर्वथा कृपासाध्य। बड़े–बड़े ऊँचे अधिकारी हो सकते हैं, पर उनकी अभिरुचि ही इस ओर नहीं होती। समस्त जीवन रचे–पचे रहनेपर भी आनन्द–शान्ति उनके भागमें बहुत ही कम हाथ लगते हैं; क्योंकि उन्हें भगवत्कृपाका अवलम्बन प्रायः नहीं रहता । पर यह व्रज–लीला ऐसी है कि इसमें रुचि यदि हुई तो यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त मान लें कि किसी विलक्षण महात्माकी अहैतुकी कृपा आपको उस स्तरमें ले जानेके लिये हो चुकी है । नहीं तो, रुचि असम्भव है । आप तो अपना परम सौभाग्य समझें । अब केवल थोड़ा–सा और आगे बढ़ जाइये। इस व्रज–लीलाकी कल्पनामें अपने मनको तदाकार कर दें । यह इतना आसान है कि इसकी कल्पना भी बिना लगे हो नहीं सकती अवश्य ही यह होनी चाहिये सच्ची । व्रजभावसे भावित चित्तसे लता पेड़, पत्ते, पगडंडी, वन, गायें, गोशालाकी भीत, साड़ी, साफा देखते–देखते ही मन इस नश्वर राज्यसे उठकर वहाँ चला जायगा, वहाँ जाकर आप यहाँकी परिस्थितिके

लिये सर्वथा चिन्ताहीन हो जायँगे, यहाँकी उधेड़–बुन रहेगी ही नहीं, मन एक अनिर्वचनीय आनन्दसे भर जायगा ।

अत्यन्त तुच्छ–से–तुच्छ पदार्थ, गंदी–से–गंदी चीज आगमें पड़कर अपना समस्त मैल–अपनी समस्त दुर्गन्ध त्यागकर ठीक आगका रूप धारण कर लेती है, वह इतनी तेज हो जाती है कि वह स्वयं अपने सम्पर्कमें आनेवाली वस्तुको भी भस्म कर देती है । इसी प्रकार किसी भी भगवत्–प्रेमी संतसे मिलिये तो सही, मिलते ही थोड़ा नहीं, पूरा–का–पूरा–सब कुछ, जो भी वे हैं, जो भी उनका है, सब .... आपमें उतर आयेगा । आग तो जड है और संत चेतन ही नहीं, इस विलक्षण जातिके चेतनके रूपमें रहते हैं कि उसकी कोई उपमा ही नहीं है । कोई दृष्टान्त नहीं है कि उस स्थितिको हम या आप बुद्धिके द्वारा समझ लें । जबतक आप ठीक–ठीक उस रसमें ढलकर अपने–आपको मिटाकर उसी रसके अनुरूप नहीं हो जायँगे, तबतक स्थिति क्या है–यह समझना सम्भव ही नहीं है । बस, रस सच्चिदानन्दमय है; आप स्वयं जबतक समस्त जडतासे सम्बन्ध नहीं तोड़ लेंगे, तबतक उस रसका आस्वाद नहीं हो सकता । अभी तो मान प्यारा लगता है । पुत्र, परिवार धन प्यारे लगते हैं । जड़ वस्तुओंकी तह–की–तह चारों ओरसे लिपटी हुई है । वास्तविक आनन्दकी बात छोड़ दें; संतके प्रति साधारणसे सम्बन्धका जो फल होना चाहिये, वह भी हम लोगोंमेंसे शायद ही किसीमें अभिव्यक्त हुआ हो ! देखें, मैं कहता हूँ–'आप यह कार्य कर दें,' और संत भी मेरी तरह ठीक यही बात कहते हैं । दोनों ही शब्द हैं, पर दोनोंमें इतना अन्तर है कि उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती । मेरा कहना, मेरी आवाज, उस चेतन सत्ताके आधारपर है, जिसकी संज्ञा 'जीव' है और जिसमें यह अहंकार वर्तमान है कि मैं हूँ; परंतु आप यह कार्य कर दें – संतके मुखके निकले हुए ये शब्द उस विलक्षण अनिर्वचनीय चेतन सत्ताके आधारपर हैं जो कहता है –

'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।।'
'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।'
'अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।।'

परंतु क्या आपको वह आनन्द मिलता है ? निश्चय ही नहीं मिलता। मिलता होता तो आपकी स्थिति ही बदल जाती । वहाँ संतके ढाँचेके अन्तरालमें वह बोलता है, जो सर्वेश्वर है, जो 'सुहृदं सर्वभूतानाम्' की घोषणा करता है; जिसमें केवल आनन्द–ही–आनन्द है । पर आपको तो डर लगता है, प्रतिकूलताकी प्रतीति होती है । जहाँ प्राणकी व्याकुलता लेकर सदाके लिये उसीमें समा जानेकी इच्छा हो जानी चाहिये थी, वहाँ उपरामता भी आती है । ऐसा क्यों होता है ?

भगवान्‌में सुखही सुख है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

इसलिये कि उसमें मिले नहीं । आगकी तरह उसकी कृपा आपको चारों ओरसे घेर रही है, घेरे हुए है और आगे चलकर मिला भी लेगी निश्चय; परंतु अभीतक आप अपनी ओरसे मिले नहीं। अपनी दुर्गन्धसे आपको घृणा नहीं है। आप उससे मिल जानेकी तीव्र लालसा नहीं रखते। विश्वास कीजिये– 'आप चाहे मलिन–से–मलिन प्राणी क्यों न हों, केवल मैलेकी तरह आपमें दुर्गन्ध ही क्यों न भरी हो, बाहर–भीतर, नीचे ऊपर, केवल बदबू आ रही हो; पर 'संत' नामकी वस्तु इतनी पवित्र है, इतनी सरस है कि उसका स्पर्श होते ही आप बिल्कुल उसी ढाँचेमें ढल जाइयेगा । आग क्या यह देखती है कि यहाँ मैला है? मैला आगमें पड़ा कि सारा–का–सारा अंगारा हो जायगा । अस्तु, मिलिये, उसमें मिलिये । अपनी सारी मलिनता, सारी दुर्गन्ध लेकर मिलिये ! दिन–रात उसके इशारे पर चलनेकी चेष्टा कीजिये । दिन–रात सोचिये, संत कितने कृपालु हैं । दिन–रात यह विचार कीजिये – 'कृपामय ! तुम्हारी कृपा ही मुझे भले अपना ले, मुझमें तो बल नहीं ।' दिन–रात नाम लीजिये, चलते–फिरते नाम लीजिये इससे बड़ी सहायता मिलेगी। दिन–रात यही इच्छा कीजिये कि संतका संग छूटे नहीं। दिन–रात यही सोचिये कि संतके लिये परिवार, संत के लिये इज्जत यदि बाधक है तो संतके चरणोंमें इनको भी समर्पण कर देना है । इसका यह अर्थ नहीं कि मैं किसीको संन्यासी बननेकी उत्तेजना देता हूँ । बाहर कपड़ा रँगकर भी क्या होगा । परंतु यह ठीक है, नितान्त सत्य है, सर्वस्वकी आहुति देनेके लिये तैयारी मनसे ही करनी पड़ेगी । बाहरका ढाँचा ज्यों–का–त्यों रहकर मन बिल्कुल खाली हो जायगा, तभी आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी । यदि किसी संतकी दृष्टि–अमृतमयी दृष्टि, अमोघ दृष्टि पड़ चुकी है तो आपके लिये परवाना काटा जा चुका; परंतु आप यदि अपनी ओरसे देनेके लिये–जिसकी चीज है, उसकी ही चीज उसको लौटानेके लिये तैयार हो जायँ, अर्थात् अपनी ममता उठाकर सबपर उसका अधिकार मान लें तो फिर शीघ्र–से–शीघ्र कृपा प्रकाशित हो जायगी । आपने पूछा और मेरे ऊपर आपका प्रेम भी है इसीलिये कहता हूँ–रोटी मुझे भी भगवान् ही देते हैं, कपड़े भी वे ही देते हैं, आपको भी वे ही देते हैं और देंगे । फिर अपनी एवं परिवारकी चिन्ता क्यों करते हैं ? मैं जिस दिन उनका होऊँगा, उसी दिन मेरा मन यह ठीक कहेगा कि 'मुझसे सम्बद्ध समस्त चीजें उनकी हैं–वे उन्हें नष्ट कर दें, तोड़ दें, फेंक दें या जो भी चाहे करें–मैं क्यों कहूँ – ऐसा करें, वैसा करें। मेरी कोई चाह नहीं – उनकी चाह ही, बस आपकी चाह ।' यह भाव ही संत–चरणोमें प्रेम होनेकी पहली सीढ़ी है ।

भगवान्में सुखही सुख है
पत्र-प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

आप पाँच सूत्रोंको याद रखें –

१. विषय-त्यागसे प्रेम ।
२. लीला-गुणोंके श्रवणसे प्रेम ।
३. अखण्ड-तैलधारावत् भजनसे प्रेम ।
४. मुख्यतः भगवान्के भक्तकी कृपासे ही प्रेम होता है । और-
५. यह कृपा उनकी कृपासे ही प्राप्त होती है ।

पर निमित्तरूप उपाय है – रोना, भगवान्के सामने रोते जाना । मनमें केवल श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें न्योछावर होनेकी लालसा रहकर बाकी सब लालसा मिट जानी चाहिये ।

पुत्र, स्त्री, बच्चे, परिवारका चित्र बहुत आग्रहपर ही मनमें आये; अन्यथा वे कैसे हैं, उनका क्या हो रहा है, उनका भला-बुरा किस बातमें है-इन सबको सर्वथा विश्वासके साथ भगवान्पर छोड़कर सर्वथा निश्चिन्ततापूर्वक जागनेसे सोनेतक केवल भजन-स्मरणमें समय बिताना-यही ऊँचे स्तरके त्यागका बाहरी रूप है।

एक मित्रको मैंने उनके जीवन-सुधारका यही उपाय बतलाया है कि पापसे बचो, बचनेकी चेष्टा करो, परन्तु जब भी, जिस प्रकार भी बुरे विचार मनमें आयें, उन्हें साफ-साफ लिखकर किसी सन्तके पास भेजते रहो, फिर कोई परवाह नहीं।

विज्ञानका नियम है- काँच ही नहीं, समस्त धातु बनते ही हैं सूर्यसे। सूर्यकी किरणोंसे ही समस्त धातुओंका निर्माण होता है । सूर्यकान्तमणि भी बनती है सूर्यसे ही । उसी प्रकार ठीकसे कोई भी भगवान् एवं संतकी कृपाको ग्रहण करके एक क्षणमें ही उच्च-से-उच्च अधिकारी बन सकता है । आज व्याख्यानमें सुना-लाखों वर्षके अन्धकारको मिटानेके लिये लाख वर्षकी जरूरत नहीं है । जरूरत है प्रकाश पहुँचनेकी, प्रकाश आते ही उसी क्षण उजाला हो जायगा । ठीक इसी प्रकार रत्तीभर भी कोई साधना नहीं चाहिये, जरूरत है-बस, आप सच्चे मनसे चाह लें, उनकी कृपाको ग्रहण करना । निश्चय समझें, फिर वह उसी क्षण प्रकाशित हो जायगी । उसी सच्ची चाहका स्वरूप यही है कि कोई भी चाह मनमें न रहे और वह चाह किसी अन्य द्वारा अन्य साधनसे मिटे नहीं ।

सर्वत्र भगवद्दर्शन तथा महापुरुषोंके प्रति तीव्र आकर्षण, दोनों ही बातोंकेलिये जिस क्षण तीव्र उत्कण्ठा, तीव्र चाह उत्पन्न होगी, उसी क्षण आपकी दशा बड़ी विलक्षण हो जायगी । जीवनमें केवल एक ही उद्देश्य रह जायगा-कैसे ये दो बातें पूरी हों, कैसे किस उपायसे जल्दी-से-जल्दी यह हो जाय । उस समय जो भी उपाय आपको बताया जायगा, कोई मामूली व्यक्ति विनोदमें भी आपको बता देगा

तो आप वही करने के लिये पागलकी तरह तैयार हो जाइयेगा । वह करना नहीं पड़ता, स्वाभाविक मनकी ऐसी दशा हो जाती है । पर अभी क्या दशा है–विचारें, चेष्टा करनेके लिये मन बहुत कम तैयार है । भगवद्दर्शनके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय–सबसे सरल उपाय जिसमें मनकी बहुत कम जरूरत है, ऐसा भगवान् कृष्णने उद्धवको श्रीमद्भागवत–समाप्तिके समय बताया, पर उसे कौन करनेकेलिये तैयार है ? भगवान्ने कहा है –

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीड़ां च दैहिकीम् ।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ।।
यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ।।
अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ।।

(श्रीमद्भा० ११/२१/१६–१७)

'हँसनेवालोंकी परवाह छोड़ दो, लज्जा एवं देहाभिमान भी छोड़ दो तथा कुत्ते, चाण्डाल, गौ, गधेतकको भूमिपर गिर कर साष्टांग दण्डवत् करो । जबतक सभी भूतोंमें मेरी अभिव्यक्ति न दीखे, तबतक शरीर, मन एवं वाणीकी वृत्तिसे यह उपासना करो । भगवत्प्राप्तिके जितने उपाय हैं, उनमें सबसे सुन्दर उपाय मेरी रायमें यही है कि सभी भूतोंमें मन, वाणी एवं शरीरकी वृत्तिसे मेरी भावना की जाय।'

ये भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखके वाक्य हैं । भगवान् श्रीकृष्णसे बढ़कर उपदेशक न कोई है, न हुआ, न होगा । पर कौन उपर्युक्त उपायको करनेके लिये तैयार है ? आपका शरीर इसे कर ही नहीं सकेगा । तरह–तरहकी युक्ति का, योग्यताका, महापुरुषकी रायका बहाना बताकर आप इसे टाल देंगे । इसी प्रकार महापुरुषोंमें श्रद्धाके लिये जिस समय सर्वस्व–त्यागका प्रश्न खड़ा हो जाय, उस समय इतने ऊँचे त्यागकी बात छोड़ दीजिये, तुच्छ–सा–तुच्छ त्याग भी सहन नहीं होगा । आपको जीवन–निर्वाहके लिये कमी नहीं है, मनमें रुपयेका महत्त्व रहनेके कारण होता यह है कि जरासा कहीं भी उसमें नुकसान पहुँचनेकी बात ध्यानमें आ जाय सबसे पहले उसकी रक्षाका प्रश्न उठ खड़ा होता है । ऐसे ही जिस दिन भगवद्दर्शन, संतप्रेमका महत्त्व मनमें घर कर जायगा, उस दिन अपने–आप सभी उपाय आप करने लग जायँगे।

जैसे जब युवक बड़ा होता है और पिताकी गद्दीमें बैठने लगता है तो अपने

आप पैसे कमानेके गुण सीख लेता है, उसी प्रकार जब लगन लगती है तो अपने–आप सभी साधन ध्यानमें आ जाते हैं और उनपर कैसे चला जाय – यह सब भी समझमें आ जाता है । मनमें भगवान्की लगन लगे, यही आवश्यक है और क्या कहूँ, सभी इष्ट मित्रोंको सादर सप्रेम यथायोग्य ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२४

ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे भगवान् न दे पावें

रतनगढ़

२ अक्टूबर १९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी ।

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ! आपका पत्र मिला । आपने जो लिखा, उसके उत्तरमें मुझे यही कहना है कि वास्तवमें हमलोग भगवान्‌की महिमा जानते ही नहीं । हमारा जब भगवान्‌के अस्तित्वके संबंधमें भी विश्वास डगमगाता है, तो फिर उनकी अपार अनन्त सर्वकर्तुम् सामर्थ्य और महिमा पर हमारा चित्त पूर्ण विश्वस्त और स्थिर होजाय, यह कैसे संभव है । यदि हम भगवान्‌की महिमा जानते होते तो उनके साथ नये–नये प्रेमका व्यवहार करनेवाले महापुरुषोंको देखकर हमारे जीवनकी ऐसी विलक्षण दशा हो जाती कि उसका वर्णन करना ही असंभव होता । विचारें, भारतवर्षके प्रधानमंत्रीसे ही जब कोई मिलकर उसके बँगलेसे बाहर आता है और वह यदि किसीसे हाथ मिला लेता है अथवा किसीकी ओर देखकर मुसकुरा देता है तो वह आदमी समझता है, मानो हम तो बस, निहाल ही हो गये, तथा कहीं वह किसीको मोटरमें साथ बैठाले, उस समय तो उसके गौरवकी, उसके मनमें अपने ऊँचे होनेकी जो तरंगें उठती हैं, उसकी कोई सीमा ही नहीं है । अब भला, ऐसे–ऐसे अनन्त मुख्यमंत्री ही नहीं, अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके इशारेसे एक क्षणमें पलक मारते–मारते बन जाते हैं और दूसरे ही क्षण नष्ट हो जाते हैं, वे अखिल ब्रह्माण्डपति स्वयं जिसके सामने आकर अत्यन्त प्रेमसे बातें करें, जिनके साथ तरह–तरहकी लीलायें करें, तो ऐसे पुरुषसे बढ़कर जगतमें और कौन है ? मानलें, जैसे भाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) ही हैं, वे एकान्त कमरेमें बैठे विष्णु भगवान्‌से बातें कर रहे हैं, उसी समय आप आये, आपने कमरेके बाहरसे पुकारा और पुकारतेही उन्होंने आपसे बड़े प्रेमसे कहा–आओ! पधारो !! अब आप

ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे भगवान् न दे पावें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

रत्तीभर भी इस बातका महत्त्व जानते तो आपको निश्चय ही अनुभव होता कि जगत्में आपसे बढकर कोई नहीं है । क्योंकि वे ही भाईजी हैं, जिनसे भगवान् विष्णु बात करने आ चुके हैं, जिनसे नारद एवं अंगिरा ऋषि मिलने आ चुके हैं, यह हम सब जानते हैं, उन्हीं भाईजीसे हम भी तो अति निकटकी आत्मीयता पा रहे हैं। हमसे बढकर भाग्यवान् और कौन हो सकता है ? अशान्तिकी तो छाया भी हमको छू नहीं सकती । हमारा मन तो ऐसे अतुलनीय आनन्दसे छलकते रहना चाहिये कि जगत् हमको देखकर दंग रह जाये।

जिस शरीरसे भाईजीने भगवान्की (सेठजीके कथनानुसार) पूजाकी है, जिस भाईजीके शरीरको भगवान् विष्णुके शरीरका संस्पर्श मिल चुका है, उसी शरीरसे भाईजी आपको स्पर्श करते हैं, जिन आँखोंसे सेठजी भगवान् नारायणका दर्शन करते हैं, उन्हीं आँखोंसे हम सबको भी देखते हैं, सच मानिये – यदि किसी दिवस भगवान्की कृपासे उनकी अनन्त महत्ता पर आप विश्वास कीजियेगा, उसी दिवस श्रीसेठजी एवं श्रीभाईजी जैसे महापुरुषके मिलनेका क्या आनन्द होता है – यह समझ सकियेगा ।

शिवभगवानजी ! हम सभीका मन विषयोंसे कूट–कूटकर भरा है । हम लोगोंका मन एकदम गंदा है । इसीलिये महापुरुषोंके दर्शनका हमें आनन्द नहीं मिलता । समझना–समझाना कठिन है । वस्तुतः भाईजी–सेठजी जैसे महापुरुषोंके संगका आनन्द इतना दिव्य, इतना विलक्षण, इतना असीम है कि बस, इस आनन्दकी कहीं भी, किसी भी सुखसे तुलना हो ही नहीं सकती । इन महापुरुषोंका संग–जनित आनन्द ऐसा है जो क्षण–क्षण नवीन–नवीन मंगलका सृजन करेगा । वह क्षण–प्रतिक्षण बढता ही जायेगा, एवं कभी समाप्त नहीं होगा । हाथ जोड़कर, दीन होकर रोते हुए हम लोग प्रार्थना करें – "प्रभो ! अत्यंत पामर, दीन, हीन मलीन, विषयोंके कीट हमलोगोंपर अपनी कृपा प्रकाशित करो । नाथ ! तुम्हारे जन सन्तोंके प्रति निस्वार्थ प्रेम, केवल प्रेमके लिये प्रेम उत्पन्न कर दो ।" यह प्रार्थना बिना किसी व्यवधानके प्रतिदिन ही हो और यदि दिनमें भी अनेक बारकी जा सके, और भी उत्तम हो ।

शिवभगवानजी ! प्रार्थनासे बड़ा काम होता है । सच मानिये – ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे भगवान् नहीं दे सकें । ऐसी कोई प्रार्थना नहीं, जिसे भगवान् पूरी नहीं कर सके । वे एक क्षणमें असंभव को संभव कर सकते हैं । हमारी कठिनाई यही है कि उन पर हमारा विश्वास नहीं । यही हमारा सबसे भीषण दुर्भाग्य है।

ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे भगवान् न दे पावें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

हरिसे लागा रहु रे भाई ।
तेरी बनत बनत बनि जाई ।।

जिसकी अपार कृपासे, अहैतुकी कृपासे, आप यहाँ पारमार्थिक पवित्रतम वातावरणमें आ पहुँचे हैं, उसीकी अपार कृपा निश्चय ही बिना किसी भी शंका–संदेहके आपके आगेका रास्ता भी तय करा देगी, भक्त भारतेन्दु बाबूका एक पद है, उसकी दो पंक्तियाँ हैं –

जो हम बुरे होइ नहिं चूकत नितकी करत बुराई ।
तो तुम भले होइ छाँड़त हौ काहे नाथ भलाई ।।

'नाथ ! मैं बुरा हूँ, बुरा करना मेरा स्वभाव है, मैं नित्य–निरन्तर बुराई ही करता रहा हूँ, बुराई करनेसे कभी भी नहीं चूकता, अपना स्वभाव मैं नहीं छोड़ता, तब मेरे नाथ ! तुम भले होकर अपना स्वभाव क्यों छोड़ते हो ? तुम्हारा स्वभाव तो भला करना है ही, फिर तुम भी अपना स्वभाव मत छोड़ो।'

बिल्कुल ऐसी ही बात भगवान् करते हैं निश्चय मानिये – जैसे सूर्यमें यह शक्ति ही नहीं कि वह किसीको अन्धकार दे सके, वैसे ही भगवान्में, विनोदकी भाषामें कहनेपर, यह कहा जा सकता है कि उनमें यह शक्ति नहीं कि वे किसीकी बुराई कर सकें । अब आप ही सोचें, जीत किसकी होगी ? एक ओर अखिल ब्रह्माण्डपति अपने स्वभावका पालन करेंगे और एक ओर तुच्छ प्राणी अपने स्वभावका पालन करेगा । इन दोनोंमें निश्चय ही जीत भगवान्‌की होगी ।

सूर्यसे ही सब वस्तुएँ बनती हैं । काँच, सोना, चाँदी और मणियाँ–सब सूर्य ही बनाते हैं । सूर्यकी किरणोंसे ही सब बनता है परन्तु उन्हींकी बनायी हुई चीजोंमें किसी पर तो किरण खूब चमकती है, किसी पर किरण पड़कर थोड़ा गरम होकर ही रह जाती है । इसी प्रकार भगवान्‌की अहैतुकी कृपा ही सबमें भगवद्विश्वास पैदा कराती है । धीरे–धीरे यह कृपा ही पूर्ण विश्वास कराती है। कृपामें पड रहकर अपने आप अन्तःकरण पूर्ण कृपा–प्रकाशका अधिकारी बन जाता है । इसलिये घबराना नहीं चाहिये–बस, पड़े रहना चाहिये कृपारूप किरणोंके प्रकाशमें । फिर अपने आप ही सर्वोत्तम बन जाइयेगा ।

यदि आप अभी किसी दूरस्थित मित्रको याद करें तो उसकी मानसिक मूर्ति तो सामने आ जायगी, पर उसका शरीर यहाँसे बहुत दूर किसी अन्य स्थानमें होनेके कारण नहीं दीखेगा; परंतु भगवान्में यह बात नहीं है । भगवान् और भगवान्‌का स्मरण दो वस्तु नहीं हैं । जिस समय आप भगवान्‌की मूर्ति अपने मानसपटलपर लाते हैं, उसी समय वहीं पूर्णरूपसे भगवान् आपके मनमें आ जाते हैं । पर वे बोलते इसलिये नहीं हैं कि आप उन्हें भावनाका चित्र मान लेते हैं और

थोड़ी देर बाद फिर दूसरे काममें लग जाते हैं । अब कोई एक भी लीला चित्र बाँधकर मनको उसमें डुबाये रक्खें तो उसी भगवान्‌की मूर्तिमें भगवान् प्रकट हो जायँगे; क्योंकि भगवान् वहाँ पहलेसे ही हैं । जबतक मन नहीं लगायेंगे, तबतक 'मैं भगवान्‌को चाहता हूँ' यह कहना बनता नहीं । आप ही सोचें–धन चाहनेपर मन उसमें कैसे लगता है ? कौन–सी युक्ति मन लगानेकी आपने किसी से पूछी थी ? नहीं पूछी थी, मनकी स्वाभाविक गति धनकी ओर लग रही थी, क्योंकि धनकी चाह थी । इसी प्रकार जहाँ भगवान्‌की चाह है, वहाँ मनकी गति उसी ओर दौड़ेगी । धन तो चाहने मात्रसे नहीं मिलता, उसके लिये न जाने कितने उद्योग करने पड़ते हैं, फिर उद्योगके सफल होनेका निश्चय नहीं । पर इसमें केवल चाहकी जरूरत है । 'हे नाथ ! तुम मुझे मिल जाओ – यह चाह होते ही वे मिल जायँगे । आप ही सोचें–जब भगवान्‌का चिन्तन छोड़कर मन दूसरी चीजपर जाता है, तब उसके लिये भगवान्‌से अधिक मूल्य उस वस्तुका है या नहीं ? और जब उसकी कीमत आपके मनमें अधिक है तो भगवान् क्यों आयें ? मुझे सचमुच ज्ञात नहीं कि भगवान्‌के लिये सच्ची चाह कैसे उत्पन्न होती है; पर यह ठीक–ठीक जानता हूँ कि सच्ची चाह उत्पन्न होते ही वे मिल जायँगे। मैं तो अपनी बात कहता हूँ–सचमुच मुझे यही लगता है कि चाह होते ही भगवान् उस चाहको पूर्ण कर देंगे ।

मोहन मुखारबिंद पर मनमथ कोटिक वारौं री माई ।
जहँ जहँ अंगन दृष्टि परति तहँ तहँ रहत लुभाई ।।
अलक तिलक कुंडल कपोल छबि, इक रसना मो पै बरनि न जाई ।।
गोबिंद प्रभुकी बानिक ऊपर, बलि बलि रसिक चूड़ामनि राई ।।

जगत्‌का समस्त सौन्दर्य इकट्ठा कर लेनेपर भी श्याम–सुन्दरके श्रीविग्रहके सौन्दर्यसागरकी एक बूँदके भी बराबर नहीं होता । त्रिभवनमें सबसे सुन्दर कामदेव माने जाते है; पर शास्त्रमें ऐसा वर्णन मिलता है कि श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके रूपके करोड़वें अंशके करोड़वें अंशसे कामदेवमें सुन्दरता आती है । श्रीकृष्णके एक–एक अंगपर करोड़ों कामदेवोंकी छबि फीकी पड़ जाती है । यह केवल भावुकताकी बात नहीं है । सचमुच ही जिन संतोंको उनकी हल्की–सी झाँकी मिल जाती है, वे बिल्कुल पागलसे हो जाते हैं । इसी त्रिभुवनमोहन नामको सुनकर श्रीकृष्णके प्रति श्रीगोपीजनोंका हृदय बिक जाता है । साधनाके बाद जब गोपीभावके साधकोंका नित्य सच्चिदानन्दमय वृन्दावनधाममें जन्म होता है और गोपीदेहमें जब किशोर–अवस्थाका प्रादुर्भाव होता है, तब श्रीकृष्णका रूप देखनेका, श्रीकृष्ण–नाम सुननेका एवं उनकी वंशीध्वनि सुननेका सुअवसर उन्हें प्राप्त होता

है । बस, एक बार इन तीनोंमेंसे किसीको देखने या सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ कि एक अनिर्वचनीय दशा प्रारम्भ होती है, जिसकी जगत्में कहीं कोई तुलना ही नहीं है । सूरदास, नन्ददास आदि महात्माओंने इसी दशाका वर्णन करते हुए जो पद लिखे हैं, उन्हें 'हिलग'के पद कहते हैं । यथार्थ दशाका वर्णन तो वाणीमें आ ही नहीं सकता । जो आता है, वह भी उसीको अनुभव हो सकता है कि जो निरन्तर भजन–स्मरण करते–करते अपनी सारी विषयासक्ति खो चुका है । अस्तु, जब गोपियोंकी व्याकुलता–श्रीकृष्णसे मिलनेकी व्याकुलता, चरम सीमाको पहुँच जाती है, तब पहले–पहल उनका रासलीलामें श्रीकृष्णके साथ मिलन होता है और इसके बाद उन्हें सेवाका अधिकार मिलता है । फिर एक लीला होती है – विरहकी लीला, अर्थात् श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियोंको छोड़कर मथुरा चले जाते हैं और वहाँसे द्वारका चले जाते हैं । इसी वियोगकी दशामें प्रेमका यथार्थ स्वरूप खिलता है। प्रेम क्या वस्तु है ? यह व्रजसुन्दरियोंकी दशासे कुछ–कुछ अनुमान लगाया जा सकता है । इसी दशाका वर्णन करते हुए महात्माओंने लीला देख–देखकर जो पद लिखे हैं, वे विरहके पद कहे जाते हैं । महात्माओंके जो पद मिलते हैं, उनमें भी कुछ ऐसे हैं, जो कल्पनासे लिखे गये हैं और कुछ लीला देखकर–अनुभव करके लिखे गये हैं । यह निर्णय पहुँचे हुए संतलोग ही कर सकते हैं कि कौन अनुभवका है, कौन कल्पनाका । पर हमारे–जैसे तुच्छ प्राणियोंकेलिये, पामर प्राणियोंके लिये तो सभी पद–चाहे कल्पनाके हों, चाहे अनुभवके हों–पवित्र करनेवाले ही हैं । अतः श्रद्धासे युक्त होकर व्रजसुन्दरियोंकी चरणधूलिकी वन्दना करते हुए, उनकी कृपाके एक कणकी भीख माँगते हुए हमलोग उनकी विरह–चर्चा करें, सुनें । मन लगानेके उद्देश्यसे नहीं, मनको पवित्रतम करनेके उद्देश्यसे विरहकी चर्चा सुनें, करें ।

उन विरहके पदोंमें भी कई तो श्रीराधाजीके विरहके पद हैं और कई उनकी सखियोंके विरहके । पर यह भी निर्णय करना कठिन है कि कौन किसके हैं । अस्तु, किसीके भी हों, हमारे जैसोंको चरणोंमें स्थान देकर, हमारी मलिन आत्माओंको अपनी कृपाकी बूँद देकर कृतार्थ करें–यही राधारानीसे, व्रज–सुन्दरियोंसे एवं श्रीकृष्णसे प्रार्थना है ।

प्रेमकी सब अवस्थाओंका, ऊँचे–से–ऊँचे भावोंका विकास श्रीराधारानीमें होता है । रसशास्त्रके पण्डितोंने तथा भावुक, अनुभवी वैष्णवोंने इन बातोंकी विस्तारसे आलोचना की है । उसी प्रेमकी एक अवस्थाका नाम है–प्रेम–वैचित्त्य। इसका प्रकाश प्रायः राधारानीमें ही होता है तथा उनकी अष्टसखियोंमें ही होना सम्भव है। इसमें होता है यह कि श्रीकृष्ण पासमें रहते हैं, राधारानी स्वयं श्रीकृष्णकी

गोदमें सिर रखकर लेटी रहती हैं, पर उन्हें यह भान होने लग जाता है कि श्रीकृष्ण हमें छोड़कर कहीं चले गये और रोने लगती हैं–इतनी व्याकुलता हो जाती है कि फिर सर्वथा मरणकी दशा उपस्थित हो जाती है । श्रीकृष्णकी गोदमें रहकर ही ऐसी दशा होती है। श्रीकृष्ण यह देखकर आनन्द–निमग्न होते है तथा राधाप्रेमकी अतुलनीय दशाका आस्वाद लेते हैं ।

रासलीलामें सब गोपियोंको छोड़कर श्रीकृष्ण राधारानीको एकान्तमें ले चले । वे दो ही रह गये और उच्चतम प्रेमकी तरगोंका प्रवाह आरम्भ हुआ । श्लोकोंमें उसका संकेत श्रीशुकदेवजीने किया है । इसके बाद अत्युच्च अवस्था, मानकी अवस्था आरम्भ हुई । यह मान यहाँका निकृष्ट अभिमान नहीं है, लोग सोचते हैं कि श्रीराधारानीने अभिमान कर लिया, इसीलिये श्रीकृष्ण उन्हें छोड़कर चले गये; पर वहाँ तो बात ही अत्यन्त विचित्र हुई थी । यह मैं केवल अपने अनुभवहीन ज्ञानपर नहीं कह रहा हूँ, परम रागमार्गीय भक्त सनातन गोस्वामीको इस लीलाका संकेत प्राप्त हुआ था और उन्होंने अपनी रासकी टीकामें इसका संकेत भी किया है । अस्तु, प्रेमकी उच्चतम अवस्था बढ़ते–बढ़ते वैचित्त्यकी अवस्था आरम्भ हो गयी और राधारानी ठीक श्रीकृष्णके पास रहकर भी यह अनुभव करने लगी कि श्रीकृष्ण मेरे पास नहीं हैं । 'हा नाथ ! रमण ! प्रेष्ठ !' आदि उस प्रेम–वैचित्त्यकी अवस्था है, जहाँ श्रीकृष्णकी गोदमें पड़ी हुई राधारानी यह श्लोक कह रही हैं और श्रीकृष्ण आनन्दमें डूब रहे हैं । श्रीराधारानी मूर्च्छित हो जाती हैं। उसी क्षण गोपियाँ खोजती हुई वहाँ आ पहुँचती हैं । श्रीकृष्णको उनकी आहट मिल जाती है और इसके पहले कि वे राधारानीको सचेत कराकर दूसरी अवस्थामें ले चलें, उन्हें गोपियाँ दीखने लग जाती हैं । इसलिये श्रीकृष्ण वहीं वृक्षोंकी आड़में खड़े हो जाते हैं, गोपियाँ आती हैं, श्रीराधारानीको मूर्च्छित अवस्थामें पाती हैं, उनको चेत कराती हैं । राधारानी समझती हैं कि श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर बहुत पहले चले गये हैं, पर श्रीकृष्ण तो उन्हें अभी–अभी छोड़कर गये हैं, इसके पहले तो प्रेम–वैचित्त्यके कारण वे वियोगका अनुभव कर रही थीं ।

यह अत्यन्त ऊँचे स्तरके प्रेमकी बात है, जिसका विकास श्रीप्रियाजी में ही होता है । हमलोग तो केवल एक अत्यन्त निम्नस्तरमें भी जा पहुँचें तो जगत्की सभी पारमार्थिक स्थितियाँ उसके सामने फीकी हो जायँ।

दो प्रकारकी लीलाएँ होती हैं – एक सखियोंके साथ, सखियोंकी उपस्थितिमें और दूसरी केवल दोके बीचमें, जहाँ श्रीकृष्ण और श्रीराधा दो ही रहते हैं । प्रेमके ऊँचे–ऊँचे स्तरोंका विकास जब दो रहते हैं, तभी होता है उनमेंसे कुछका आस्वाद अर्थात् दर्शन मंजरियोंको, दासियोंको, सहेलियोंको, सखियोंको – निकुंजछिद्रोंसे

ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे भगवान् न दे पावें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

होता है और कुछका तो बिल्कुल ही नहीं होता।

ऐश्वर्य, गुण–ज्ञान आदि समस्त भगवत्ता राधारानीमें ज्यों–की–त्यों रहती है, पर मुग्धताका इतना सुन्दर आवरण वे अपनी इच्छासे ही धारण किये रहती हैं कि लीला अनुपम–सर्वथा सब ओरसे अनुपम हो जाती है।

परन्तु इस राधारानीके राज्यकी गंध भी हमें तभी प्राप्त होगी जबकि हमारे जीवनका एक मात्र उद्देश्य श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो जायगा । मनसे अधिकसे अधिक श्रीकृष्णका चिन्तन करें । जब यह चिन्तन अखण्ड होने लगेगा तभी श्रीराधारानी एवं गोपियोंके प्रति आकर्षण बढेगा। आकर्षण जबतक विषयोंके प्रति है और वह कूट–कूटकर भरा है, तब तक मात्र बातें करनेसे क्या होता है। मानव जीवनकी सफलता इसी बातमें है कि जिस किसी भी प्रकारसे मनमें श्रीकृष्णके गुणोंकी, लीलाकी, नामकी मधुर–मधुर स्मृति बनी रहे । बस, इसी बातकी चेष्टा करें, इसीमें आपका एवं मेरा दोनोंका हित, कल्याण, सुख, मंगल कुछ भी कहें, है । सब इष्ट मित्रोंको यथायोग्य।

राधा राधा राधा राधा

।।श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२५

अन्तर्मुख रहकर प्रत्येक वृत्तिको भगवान्‌से जोड़ें

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

श्रीशिवभगवानजी !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आँखोंके सामने आप यह स्थान देख रहे हैं । पाल तना हुआ दिख रहा है । यहीं पर दिव्य सच्चिदानन्दमय वृन्दावन–राज्य है, यहींपर श्रीकृष्ण हैं और समस्त लीला ठीक यहींपर चल रही है । मनसे चिन्तन कीजिये–'संध्याका समय है । वनसे श्रीकृष्ण गायें चराकर लौट रहे हैं । आगे गायोंकी कतार है, गायें हुमग–हुमगकर श्रीकृष्णके पास जाना चाहती हैं । पीछे भी गायोंकी कतार है । बीचमें श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुर स्वरसे वंशी बजा रहे हैं। ध्वनिकी मधुरताके कारण गायोंमें भी एक अत्यन्त शान्ति–सी बीच–बीचमें आ जाती है । श्रीकृष्ण पीताम्बर पहने हुए हैं । घुँघराले केश मन्द–मन्द हवाके झोंकोंसे ललाटपर आ जाते हैं । उन्हें वे बायें हाथसे हटा देते हैं । सड़कके किनारे श्रीगोपीजनोंकी कतार लगी हुई है। श्रीकृष्ण अपने बालोंको हटाकर कभी किनारेकी ओर, कभी पीछेकी ओर ताक देते हैं, मुसकरा देते हैं । थोड़ा आगे बढ़ते हैं, गायें भी आगे बढ़ती हैं। ग्वालबाल कभी उनके पीछे हो जाते हैं, कभी आगे.......... इस प्रकार मनको कभी गायमें, कभी ग्वालबालमें, कभी श्रीकृष्णमें, कभी श्रीकृष्णके मुकुटमें, कभी उनकी घुँघराली अलकोंमें, कभी वंशीमें, कभी चरणोंमें, कभी वृन्दावनके कदम्बके पेड़में, कभी आमके पेड़में और कभी अमरूदके पेड़में स्थिर करनेकी चेष्टा करें । मनको मुकुट देखनेमें लगाया और फिर आसानीसे जितनी देर वह टिक सके उतनी देर उसे

टिकाकर, जब हटने लगे तो उनके किसी दूसरे अंगमें लगा लें, फिर वहाँसे उचटे तो तीसरे अंगमें लगाते रहिये । वन, नदी, पर्वत, गाय, सड़क, गोपी, ग्वाल–बाल, आम, अमरूद, छींके, डंडे, बाँसुरी–ऐसी अनन्त चीजें हैं, जिनमें चाहियेगा, तो मन लगा सकते हैं । बस, मनको फुरसत मत दीजिये। जीभ तो मशीनकी तरह नाम लेती रहे और मन वृन्दावनके किसी भी पदार्थका चिन्तन ही करता रहे । बहुत जरूरी हो तभी मनको बाहर लाइये । नहीं तो, अन्तर्मुख रहकर प्रत्येक वृत्तिको वृन्दावनीय किसी भी पदार्थमें तदाकार करते रहिये । अभ्यास करनेसे होगा, खूब आसानीसे होने लगेगा । सब भूलकर इसकी चेष्टा कीजिये; नहीं करेंगे तो फिर कोई उपाय नहीं है ।

जहाँ भीत दीखती है, मकान दीखते हैं, टीले दीखते हैं, कुँआ दीखता है, पेड़ दीखते हैं, वहाँ आँख मूँदकर एक बार खूब दृढ़तासे निश्चय कीजिये – 'ओह ! यहाँ तो वृन्दावन है; बस, वे पेड़, वे दृश्य हैं । बस, सामने श्रीकृष्ण हैं, गायें हैं, बस–बस यही है । इस प्रकार जितनी लीलाएँ पढ़ी हैं, सुनी हैं, जितनी सुनेंगे, पढ़ेंगे, उनमेंसे जिसकी ओर मन टने, उसीमें रम जाइये । तभी रास्ता तय होगा। मनको तन्मय करना पड़ेगा ही, चाहे कैसे भी करें । उनकी कृपाका आश्रय लेकर करें तो कुछ भी असम्भव नहीं ।

घबराना नहीं चाहिये। जिनकी अनन्त कृपासे मनमें धुँधली लालसा पैदा हुई है, उनकी कृपा निश्चय ही आगे भी बढ़ा ले जायगी । जल्दी या देरी, पहुँचना तो है ही ।

अभ्याससे सफलता मिलेगी ही । नाम तो खूब जल्दी सध जायगा । हाँ, मनको खास स्वरूपकी ओर अथवा लीलाकी ओर लगाकर दूसरा काम करनेमें विशेष गाढ़े अभ्यासकी आवश्यकता है । बीच–बीचमें जल्दी–जल्दी स्मृति तो थोड़े ही अभ्याससे सम्भव है ।

छिनहिं छिन सुरति होति री माई।
बोलनि मिलनि चलनि हँसि चितवनि प्रीति रीति चतुराई ।।
साँझ समय गोधन सँग आवनि परम मनोहरताई ।
रूप सुधा आनंद सिंधुमें झलमलात तरुनाई ।।
अंग अंग प्रति मैन सैन सजि धीरज देत छुड़ाई ।
उड़ि उड़ि लगत दृगनि टोना सो जगमोहनी कन्हाई ।।
मरियत सोचि सोचि बिन बातनि हौं बन गहन भुलाई ।
बल्लभ औचक आय मंद हँसि गहि भुज कंठ लगाई ।।

पद्यका भावार्थ यह है – श्रीगोपी अथवा श्रीराधाजी कहती हैं–'सखि !

अन्तर्मुख रहकर प्रत्येक वृत्तिको भगवान्से जोड़ें
पत्र-प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

बार-बार स्मृति हो रही है । वह बोलना, मिलना, चलना, मुसकाते हुए देखना, प्रीतिकी रीति, प्यारभरी चतुरता बार-बार याद आ जाती है । संध्याके समय श्यामसुन्दर गायोंके साथ आते थे, उस समय उनकी मनोहर छवि देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सुन्दरतारूपी आनन्दमय-अमृतमय समुद्र लहरा रहा हो और तरुणता (किशोरावस्था) रूपी तरंगें उसमें झलमल-झलमल कर रही हों। श्यामसुन्दरका एक-एक अंग क्या था, मानो कामदेवकी सेना हो । धीरज बरबस छूट जाता था । आँखोंपर किसी अंगकी छबि पड़ते ही मालूम पड़ता था मानों श्यामसुन्दर-रूप जादूगरने टोना फेंका हो, समस्त जगत्को मोहनेवाले कन्हाई अपने अंगोंकी छबिका टोना फेंककर हमें मोहित कर लेते थे । एक दिन मैं वनमें, गहन वनमें भूल गयी थी – उन प्रसंगोंकी याद कर-करके मृत्युका-सा दुःख होता है । इतनेमें ही अचानक श्यामसुन्दर आये और मन्द-मन्द मुसकाकर मेरी भुजाओंको पकड़कर मुझे कण्ठसे लगा लिया ।'

पदके इन भावोंपर एकान्तमें बैठकर विचार कीजिये । विचार करते समय मनमें एक रसकी धारा बह उठेगी । आप उसमें न जाने कहाँ-से-कहाँ बह जायँगे ।

सभी प्रेममयी लीला तथा सभी ऐश्वर्यमयी लीला, समस्त लीलाओंका आधार भगवान् श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी ही हैं । श्रीकृष्ण लीलाका आस्वाद लेते हैं और श्रीराधाजी लीलाका आस्वाद कराती हैं । ऐश्वर्यमयी लीलाके भी जैसे अनन्त स्तर हैं, वैसे ही प्रेममयी लीलाके भी अनन्त स्तर हैं । व्रजलीलामें ग्वालबालोंके साथ जो लीला होती है, श्रीगोपीजनोंके साथ जो लीला होती है तथा श्रीराधाजीके साथ- केवल एक श्रीराधाजीके साथ जो लीला होती है, इन तीनोंमें बड़ा अन्तर होता है ।

इन तीनों लीलाओंमें भी कई स्तर हैं । इन स्तरोंका अनुभव प्रेमी साधककी साधनापर ही निर्भर रहता है । जो जितना ऊँचा होता है, वह उतने ही ऊँचे स्तरका अनुभव करता है । इन तीनों लीलाओंमें जो गोप-ग्वाल-बालके संगकी लीला है, उसका अनुभव तो कुछ भाग्यवान् संत कर पाते है, यद्यपि उनकी संख्या भी बहुत कम ही है । पर श्रीगोपीजनोंके साथकी लीलाका अनुभव करनेवाले संत तो बहुत ही थोड़े होते हैं तथा श्रीराधाजीके साथ जो लीला होती है, उस लीलाका अनुभव करनेवाले तो इने-गिने कुछ बिरले ही होते हैं । बात कर लेना आसान है । शास्त्र पढ़कर हम बहुत-सी बातें, लोगोंको चकित कर देनेवाली बातें बता सकते हैं; परंतु सचमुच इन लीलाओंका दर्शन होकर कृतार्थ होनेका सौभाग्य, इनमें स्वयं सम्मिलित होकर कृतार्थ होनेका सौभाग्य, तो श्रीराधारानीकी, श्रीकृष्णकी

अन्तर्मुख रहकर प्रत्येक वृत्तिको भगवान्से जोड़ें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

महान् कृपासे किसी–किसीको ही होता है । जहाँ समस्त परमार्थ–साधना एवं सा ध्यतत्त्व समाप्त हो जाता है, वहाँ इस लीला–तत्त्वका श्रीगणेश होता है । पर यह बात दिमागमें तबतक नहीं आ सकती, जबतक कि भगवत्कृपासे अन्तःकरण सर्वथा निर्मल होकर कृपाके ही परायण नहीं हो जाता ।

वेदान्तकी सच्ची साधना यदि हो और सचमुच हम ब्रह्मप्राप्तिकी स्थिति प्राप्त कर सकें तथा इसके बाद वस्तुतः आगे जो एक रहस्यमय अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दमय साधनाका मार्ग है, वह आरम्भ हो, तब कहीं सम्भव है कि मनुष्य असली सगुण–तत्त्वका रहस्य समझ सके । नहीं तो, होता क्या है कि दुःखकी निवृत्ति हो जाती है, ब्रह्मानन्दकी अनुभूति हो जाती है । पर इससे भी परे कुछ ऐसी रहस्यमयी बातें हैं, ऐसा अनिर्वचनीय कुछ भगवत्तत्त्व है, जो सर्वथा किसी भी साधनाके द्वारा नहीं समझा जा सकता । उस स्थितिकी प्राप्ति सभी ब्रह्मप्राप्त पुरुषोंको भी हो ही, यह निश्चित नियम नहीं है ! हो भी सकती है, नहीं भी ।

ये सब उल्टी–सीधी बातें–शास्त्रीय ज्ञान, तत्त्वज्ञानकी चर्चा आदि तो मनुष्य उसी क्षण भूल जाय, यदि स्वप्नमें भी उसे एक हल्की–सी श्रीकृष्णके रूपकी झाँकी देखनेको मिल जाय । वह जबतक नहीं मिलती, तभीतक सारी बहस, सारी उधेड़–बुन है ।

भाई श्रीशिवभगवानजी ! प्रेम उत्पन्न होनेपर तो एक क्षणकी भी विस्मृति हो ही नहीं सकती । हमें विस्मृति इसीलिये होती है क्योंकि भगवान्से हमारा प्रेम नहीं है । भगवान्की सत्ताका उनकी महत्ताका हमें ज्ञान नहीं है । परन्तु जब तक चित्त अशुद्ध है तबतक ब्रह्माजी भी हमें समझाने आ जायें, हम भगवान्की ओर उन्मुख नहीं हो पावेंगे । और यह चित्त हमने ही अशुद्ध किया है, इसमें जितना विषय–कीच है, सब हमने बटोर–बटोरकर इसमें इकट्ठा किया है । अतः जबतक हम इन वासनाओंके मलको स्वयं स्वच्छ नहीं करेंगे, कोई चाहे कितना ही बड़े–से–बड़ा सन्त–महात्मा हो, हमारा कल्याण नहीं कर सकता । अतः हम चाहे आज अभी इसे स्वच्छ कर लें, चाहे अनन्त कालमें कभी इसे स्वच्छ करें, यह जब कभी भी करना होगा, हमें ही करना है । यह मेरी बात गाँठ बाँध लें ।

सभी इष्ट मित्रों एवं सत्संगियोंको जय श्रीराधे ।

(श्री शिवभगवानजी फोगलाको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे)
राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२६

प्रेम ही सचमुच सार है

रतनगढ़

५ नवम्बर १९४१ ई.

श्रीशिवभगवानजी फोगला

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आप ज्यौनार करना चाहते हैं, करिये । सारा जगत्का व्यवहार जागतिक शरीर करे, परन्तु मन श्रीकृष्णके पास, श्रीराधारानीके पास ही रहे । मात्र कुछ कालके लिये मनको शुद्ध करनेके लिये ही मन लगानेकी आवश्यकता है । जैसे ही मनमें किसी क्षण श्रीकृष्ण आये, फिर यह पूछने–सुननेकी सारी प्रक्रिया समाप्त हो जायगी । फिर तो उन्हें देखते ही रहियेगा और सब भूल जायेंगे ।

नारायणस्वामी थे–एक बार वे बैठे हुए थे, सामने श्रीकृष्ण दीखे । वे लगे दौड़ने । दौड़ते – दौड़ते कुसुमसरोवर पर जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर देखा – श्रीकृष्ण पीठकी ओर आगये । फिर पीछे दौड़े, दौड़ते–दौड़ते अपने स्थानपर आगये । इसी प्रकार दिनभर दौड़ते देखकर पुजारीने पूछा–बाबा ! क्यों दौड़ते हो ?' उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया । बहुत आग्रह करनेपर बोले–'भैया ! श्रीकृष्ण दीखते हैं, दीखनेपर ऐसी इच्छा होती है कि पकड़कर इनके हृदयमें समा जाऊँ; पर वे भागने लगते हैं । मैं भी दौड़ने लगता हूँ । दौड़ते–दौड़ते जब थक जाता हूँ तब वे पीछे दीखने लग जाते हैं । मै फिर पीछेकी ओर दौड़ने लगता हूँ । सारे दिन यही लीला चलती रहती है ।' पुजारीने पूछा–'बाबा ! उनसे कुछ पूछते नहीं ?' स्वामीजीने कहा–'पहले तो बहुत–सी बातें याद रहती हैं और सोचता हूँ–यह बात पूछूँगा, यह शास्त्रीय बात जान लूँगा, पर रूप देखते ही सब भूल जाता हूँ । बस, देखते ही रह जानेकी इच्छा छोड़कर बाकी सब भूल जाता हूँ ।

श्रीकृष्ण श्रीगोपीजनोंसे कुरुक्षेत्रमें मिलनेपर कहते हैं – 'गोपियों ! तुमने हमें कृतघ्न समझा होगा; क्या करें, कामकाजकी भीड़में लग गये । देखो, ईश्वर ही प्राणियोंका संयोग करता है और वही पुनः वियोग करता है । .... सौभाग्यकी

बात है कि हमारे प्रति तुमलोगोंका प्रेम निश्चल रहा ।' बस, यह प्रेम ही सचमुच सार है । इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें वर्णित है । पर वास्तवमें श्रीकृष्ण गोपीजनोंसे हटकर भी नहीं हटे थे, श्रीकृष्ण हटते ही नहीं । उद्धवजीके ज्ञानका गर्व शान्त होनेपर जब वे श्रीकृष्णके पास लौटे हैं, उस समयका बड़ा ही सुन्दर वर्णन नन्ददासजीने किया है –

गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि ।
x x x x x
करुणामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूठी ।
जब ही लौं नहिं लख्यौ तबहि लौं बाँधी मूठी ।।
मैं जान्यौ व्रज जाय कै तुम्हरो निर्दय रूप ।
जे तुम कौं अवलंबहीं तिन कौं मेलौ कूप ।।
कौन यह धार्म है ।
पुनि पुनि कहै अहो स्याम ! जाय वृंदावन रहिये।
परम प्रेमको पुंज जहाँ गोपिन सँग लहिये ।।
और काम सब छाँड़ि कै उन लोगन सुख देहु ।
नातरु टूट्यो जात है अबहीं नेहु सनेहु ।।
करौगे फिरि कहा ।
सुनत सखा के बैन नैन भरि आए दोऊ ।
बिबस प्रेम आबेस रही नाहीं सुधि कोऊ ।।
रोम रोम प्रति गोपिका है रहि साँवर गात ।
कल्पतरोरुह साँवरौ ब्रजबनिता भईं पात ।।
उलहि अँग–अंग ते ।
है सचेत कहि भले सखा ! पठए सुधि ल्यावन ।
अवगुन हमरे आइ तहाँ ते लगे बतावन ।।
मोमें उन मैं अंतरौ एकौ छिन भरि नाहिं ।
ज्यौं देखौ मो माहिं वे त्यों हौं उनहीं माहिं ।।
तरंगनि वारि ज्यों ।
गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी ।
ऊधौ भ्रमहि निवारि डारि मुख मोह की जारी ।।
अपनो रूप दिखाय पुनि गोपी रूप दुराय ।
'नंददास' पावन भये जो यह लीला गाय ।।
प्रेम रस पुंजनी ।

प्रेम ही सचमुच सार है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

श्रीकृष्ण ही श्रीराधा हैं, श्रीगोपियाँ हैं । श्रीराधा श्रीगोपियाँ ही श्रीकृष्ण हैं। पर वियोगके बिना प्रेमका विकास नहीं होता–यह दिखानेके लिये, जगत्के साधकोंको कृतार्थ करनेके लिये, प्रेमसाधनाकी पद्धति सिखानेके लिये वियोगका अभिनय मात्र किया गया था ।

व्रजमें आज भी लीला चलती रहती है, नित्य रसमयी लीलाका प्रवाह अनादिकालसे चलता आ रहा है, अनन्त कालतक चलता रहेगा । साधक जब उस लीलामें प्रवेश करता है, तब पहले कुछ दिन वहाँ नित्य सखियोंके संगमें रहकर पकाया जाता है । वही हिलगकी स्थिति है । इसके बाद जब व्याकुलता चरम सीमाको पहुँच जाती है, तब रासमें सर्वप्रथम मिलन होकर – अनन्तकालके लिये स्वयं भी सेवामें अधिकार पाकर निहाल हो जाता है यह एक साधारण नियम है ।

यों तो यह व्रजराज्य ऐसा है, जहाँ श्रीकृष्ण जब चाहें, जो चाहें, वही नियम बन जाता है । प्रेमका साधक तो श्रीकृष्णका अपने–का–अपना होता है। उसके लिये कौन–कैसा नियम ! परन्तु प्रेममें त्याग–ही–त्याग है । जिसके जीवनमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही साध्य–साधन हैं, उसीके लिये यह पथ है, दूसरेके लिये इसकी गुंजाइश नहीं है । पतिव्रताकी तरह उसे बाट देखनी पड़ती है कि पतिका संदेशा लेकर कौन आता है, स्वयं चलकर दूतकी तलाशमें पतिव्रता नहीं जाती । स्वामीका दूत ही पतिव्रताके पास आता है । उसी प्रकार साधक श्रीकृष्णका नाम लेकर निरन्तर आँसू बहाता रहता है और श्रीकृष्णकी ओरसे समयोचित अधिकारोचित चेष्टा होती है ।

मनमें तीव्र लगन, तीव्र चाह, उत्कण्ठाकी तीव्र आग है; पर बाहर किससे कहें ? साधक समझता है – 'मेरे नाथ ! तुम्हें ज्ञात है, तुम्हारे पास साधन है, तुम चाहो तो आ सकते हो, पर मैं चलकर भी तुम्हारे पास नहीं पहुँच सकता । मेरे जीवनधन ! अनन्त जीवनकी चाह लेकर बैठा हूँ, कृपाकी डोरीको स्वयं कृपा करके पकड़ा दो । अंधा हूँ, पथ नहीं जानता । मेरे प्रियतम ! जिस पथसे चलना चाहता हूँ, उसमें कोई साथी नहीं । तुम्हारे सिवा अवलम्बन नहीं, एकमात्र तुम्हीं सम्हाल सकते हो । सम्हाल लो, नाथ ! ऐसी प्रार्थना हो, निरन्तर मशीनकी तरह नाम मुँहसे निकलता रहे तथा मन लीलाकी तरंगोंमें डूबता–उतराता रहे–यही करना चाहिये।

आप सायंकाल ज्योनारमें बैठे रह सकते हैं, पर मनसे अपनेको बरसानेके सरोवरपर रख सकते हैं, देख सकते हैं । वहाँ श्रीराधारानी हैं, ललिता हैं, श्रीकृष्ण हैं, मधुर वंशी बज रही है । सब हो सकता है; पर चलना होगा आपको ही, इसकी तैयारी करनी पड़ेगी आपको ही । सारा प्रपंच , सारा व्यवहार इसीके

अनुकूल होनेपर ही स्वीकार्य है; अन्यथा तुरंत सबकी आहुति देनेके लिये सच्ची लगन रखनी पड़ेगी । मित्र रहेंगे, परिवार रहेगा, माँ रहेंगी; पुत्र रहेंगे; आपके सिरपर पगड़ी, टोपी, बदनपर कोट भी ऐसा ही रहेगा, पर मनमें एक विलक्षण व्याकुलताकी आग जलती रहेगी । यह जलन बढ़ती ही चली जायगी । 'कैसे श्रीकृष्ण–चरणोंमें न्यौछावर हो जाऊँ, क्या करूँ, कैसे करूँ ?' एकान्तमें बैठकर रो पड़ियेगा । यह होगा उनकी कृपासे ही; पर उसके पहले आप भावना कीजिये, उनकी कृपा अनन्त है । कृपाको ग्रहण करते चले जाइये । 'प्रेमगली अति साँकरी, तामें द्वै न समाय ।' संसार और श्रीकृष्णप्रेम दोनों साथ नहीं रह सकते। या तो संसार ही रहेगा अथवा भगवान् ही रहेंगे । और क्या कहूँ । सबको राधे राधे ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।
पत्र संख्या–२७

ब्रह्मप्राप्त पुरुषोंमें व्रजभावका उन्मेष हो – यह आवश्यक नहीं है

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौवन्दे । आपका पत्र मिला । यहाँ आप जो वन, पर्वत, नदी, झरने, स्त्री, पुरुष, हिरन, गाय, पक्षी, महल, सड़क देखते हैं, जो कुछ भी स्त्री–पुरुषोंमें, पिता–पुत्रमें, मित्र–मित्रमें प्रेमका भाव देखते हैं, इन्हें देखकर उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी कुछ कल्पना की जाती है । पर वास्तवमें वह राज्य नहीं है, ऐसी बात नहीं है । बल्कि उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी उन–उन चीजोंके आधार पर ही ये चीजें भी कल्पित हुई हैं, उसके आधार पर ही चीजें हैं, उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी छाया–जैसी हैं । समझने–समझानेके लिये कोई दृष्टान्त ही नहीं है एक दिन सोच रहा था कैसे समझाऊँ ? पासमें कमण्डलु पड़ा था, सूर्यकी किरणोंमें उसकी छाया पड़ रही थी । मैंने कमण्डलुको घुमाना शुरू किया । विचित्र–सी छाया बनती गयी । उस छायाको देखकर कभी तो यह अनुमान हो सकता था कि कमण्डलु इस छायाका आधार है; पर कभी–कभी तो यह पता ही नहीं लग सकता था कि ऐसी छायाका आधार भी कमण्डलु हो सकता है। कुछ ऐसे ही यहाँ भी समझ सकते हैं । यहाँ जो कुछ दीख रहा है––पहाड़, नदी, वन, सूर्य, चन्द्र, गाय, सरोवर, बर्तन, साड़ी, डंडा, स्त्री–पुरुषका ढाँचा, आपसमें प्रेमका व्यवहार––सब–की–सब चीजें उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी नकल हैं। इन सबका आधार वह सच्चिदानन्दमय राज्य ही है । पर वह दिव्य राज्यं त्रिगुणात्मक मायाके आवरणके अन्तरालसे प्रतिभासित होकर विकृत हो जाता है । जहाँ आपको ये चीजें दीखती हैं, वहींपर महान अनिर्वचनीय दिव्य सच्चिदानन्दमय वृन्दावन है । पर अभी तो उसकी कल्पना सर्वथा असम्भव है। हाँ, इनको न देखकर इसके आधारपर दृष्टि डालते ही, मन टिकाते ही, इस भ्रान्तिमय छाया–स्वरूप

राज्यकी निवृत्ति हो जायगी; फिर वह चीज देखनेको मिलेगी, जो सर्वथा सब ओरसे विकारहीन सच्चिदानन्दमय है।

सच्चे वेदान्ती तो साधना करके सत्तास्वरूप सच्चिदानन्दमय राज्यमें विलीन हो जाते हैं । पर जो लड़ने–झगड़नेवाले हैं, उन्हें यह समझना ही कठिन है कि ऐसी भ्रान्ति इस रूपमें क्यों होती है । उनकी बुद्धि यह समझ ही नहीं सकती कि ठीक इस भ्रान्तिके अन्तरालमें कुछ न कुछ ऐसी ही, ज्यों की त्यों चीज है, जिसके कारण यह भ्रान्ति है ।

यहाँ आप पदोंमें सुनते हैं––श्रीकृष्ण गोपियोंको छेड़ते हैं, किसीका हाथ पकड़ लेते हैं । अब ये चेष्टाएँ यद्यपि हैं ठीक ऐसी ही, पर ऐसी होकर भी ये लौकिक नहीं, परम दिव्य हैं, सर्वथा चित्–आनन्दसे सब ओरसे ओतप्रोत हैं । उन्हें बुद्धिसे समझा ही नहीं जा सकता । उनका तो कोई बिरले भाग्यवान् महात्मा ही अनुभव करते हैं । अनुभवके पहले तो इन लीला–प्रसंगोंमें यहाँकी विकारमयी चीजोंके विकारमय भावोंका ही अधिकांश आरोप हो जाता है । महात्मा लोग ऐसी लीलाको चीनीके तूँबेसे उपमा देते हैं । चीनीका बनाया हुआ तूँबा देखकर कोई भी समझ नहीं सकता कि यह कडुवे तूँबेके अतिरिक्त कोई और चीज है । वह उसकी कटुताकी ही कल्पना करता है । ऐसे ही उस लीलाकी अत्यन्त माधुर्यमयी, सच्चिदानन्दमयी बातें भी अनधिकारियोंके द्वारा विकृत हो जाती हैं । खूब सोच लें, यह दृढ़ सिद्धान्त मान लें––समस्त जागतिक आसक्ति मिटाकर, समस्त आश्रय त्यागकर श्रीकृष्णको पकड़ना होगा, केवल तभी इस लीलाका उन्मेष सम्भव है । नहीं तो ब्रह्म–प्राप्त पुरुषोंमेंभी इसका उन्मेष हो ही, यह नियम नहीं है ।

जितनी चीजें आप देखते हैं, जो आपको प्यारी लगती हैं, जो भाव आपको प्यारा लगता है, यहाँ इस राज्यके सम्बन्धसे तोड़कर उसे दिव्य राज्यसे जोड़ दीजिये । सुन्दर–से–सुन्दर बगीचा देखा है, कुंज देखी है, उसीके आधार पर उसमें दिव्यताका भाव करके उसे वृन्दावन–कुंजके रूपमें बढिया–से–बढिया घड़ेकी जो कल्पना हो, उसका मानसिक चित्र खींचकर उससे श्रीकृष्णका हाथ धुलाना है–यह समझकर उस कलशका ध्यान कीजिये। इसी प्रकार जिस लीलाका भी वर्णन पढते हैं, उसके प्रत्येक वाक्यमें एक–एक, दो–दो, वस्तुओंका अवश्य ही उल्लेख मिलेगा, जिन्हें आपने देखा है । बस, उन्हींका चिन्तन कीजिये। एकसे मन उचटते ही दूसरेसे जोड़ दीजिये । जिस प्रकारसे भी हो, मनको उसी राज्यकी किसी वस्तुसे जोड़े रहिये । फिर निश्चय मानिये कि उसीको निमित्त बनाकर

श्रीकृष्णके दिव्य राज्यमें प्रवेशाधिकार मिल जायगा । मन टिकते ही इस भ्रान्तिमय राज्यकी निवृति हो जायगी और फिर ठीक इसी जगह सत्यवस्तु जो पहले ही है, निरन्तर है, प्रकाशित हो जायगी । पूरी चेष्टा करके मनको इस जगत्से निकालकर यहीं पर चलती हुई लीलामें, परम रमणीय रूपमें, वृक्ष, साड़ी, पगड़ी, बर्तन, बगीचे, महल आदिमें जोड़ दें, फिर निश्चय ही अभूतपूर्व शान्तिका अनुभव होगा । अभी मन दिन–रात चिन्तन करता है, कलकत्ता, बम्बई, तिजोरी, पेटी, कागज, पेंसिल, यहाँके कपड़े–लत्ते का । इनके बदले उसे वृन्दावनीय पदार्थों में जोड़ना है । यही करना, बस इतना ही करना है । फिर भगवत्कृपा का समुद्र उथलकर आपके सम्मुख सत्य वस्तुको प्रकट कर देगा और एक बार सत्य प्रकट हुआ नहीं, वह इतना आकर्षक है कि वह मनको अपने आकर्षणमें ऐसा जकड़ेगा कि मन हिलेगा ही नहीं, उसीमें पूर्णतया रससिक्त हुआ डूबा रहेगा । परन्तु यह सब होगा करने से ही । और क्या कहूँ । सभी इष्ट मित्रों, सत्संगी बन्धुओंको राधे–राधे ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–२८

जो राधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं

रतनगढ
१५ दिसम्बर १९४१ ई.

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सस्नेह राधे–राधे । आपका पत्र मिला । भगवान्‌की समस्त लीलाओंका आधार (मूल) एकमात्र श्रीराधिकाजी ही हैं । ये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी ह्‌लादिनी शक्ति हैं । स्वरूपा–शक्ति हैं । ये ही अनन्त रूप धारण करके श्रीकृष्णलीलाका सामंजस्य करती हैं । श्रीराधाजीकी प्रेम–लीला इतनी ऊँची है कि वस्तुतः वे जिसे कृपा करके कुछ दिखाना चाहें वही देख सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है । वे आज भी हैं और भावनाके अनुसार जैसी भी इच्छा कीजियेगा, वैसी ही उसी क्षण उस इच्छाकी पूर्ति कर सकती हैं । जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही राधा हैं । इनमें तनिक भी, रत्तीभर भी किसी भी प्रकारका अन्तर नहीं है। एक सच्ची घटना सुनाता हूँ, व्रजमें हुई थी ।

तीन महात्मा घूम रहे थे । घूमते–घूमते उनमें जो कुछ अधिक आयुके थे, वे तो थक गये । उन्होंने कहा—'भैया ! अब तुमलोग जाओ; मैं तो अब यहीं आराम करूँगा ।' तीनोंने दिनभर कुछ भी नहीं खाया था । अतः एक तो ठहर गये, दो आगे बढ़े । बरसाना निकट आ गया । दोनों बड़े श्रद्धालु थे । दोनोंने आपसमें सलाह करके यह निश्चित किया कि आज चलो, श्रीजीके अतिथि बनें । बात विनोदमें हुई थी; अतः उन लोगोंने फिर इसपर विचार नहीं किया । सोचा—अब रात हो गयी है, कहाँ माँगने जायँ; यहीं रातमें, मन्दिरमें, जो कुछ प्रसाद मिल जायगा, उसे खाकर पानी पी लेंगे । उस दिन मन्दिरमें उत्सव था । उत्सव देखनेमें लग गये । उत्सव समाप्त हुआ, लोग चले गये । करीब ग्यारह बजे मन्दिरके पुजारीजी जोर–जोरसे पुकारकर कहने लगे—'अरे, यहाँ दो आदमी

श्रीजीके अतिथि कौन हैं ?' इन लोगोंने आवाज सुनी, वह विनोदकी बात याद आगयी । फिर प्रेममें निमग्न हो गये । दोनोंने कह दिया––'कोई होगा ।' पश्चात् पुजारीजी इन दोनोंको ले गये और प्रसादमें जो–जो बढ़िया–से–बढ़िया चीजें थीं, भरपेट खूब प्रेमसे दोनोंको खिलायीं । इन लोगोंने प्रेममें भरकर खूब आनन्दसे प्रसाद पाया तथा पूर्ण तृप्त होकर फिर एक छतरीमें जाकर सो रहे, जो वहाँसे कुछ ही दूर हटकर थी । सोनेके बाद दोनोंको एक ही समय एक ही स्वप्न आया । दोनोंने देखा, एक अत्यन्त सुन्दर बारह वर्षकी बालिका आयी है और पूछ रही है–'क्यों, तुम लोगोंने भरपेट भोजन तो किया ? हमारे अतिथि हो न ?' उन लोगोंने स्वप्नमें ही कहा–'खूब छककर खाया।' बालिका बोली––'पर आज प्रसादमें खूब बढ़िया पान था, पुजारी वह देना भूल गया । वही पान लेकर मैं आयी हूँ ।' यह कहकर उसने दोनोंके पास दो–दो खिल्लियाँ पानकी रख दीं। उसी समय दोनोंकी नींद खुल गयी । उठकर देखा तो सिरहाने दो–दो बीड़े पानके रखे हुए हैं । दोनों रोने लगे, प्रेमसे व्याकुल हो गये । पानकी बीड़ी मुँहमें रखकर प्रेममें अधीर हो गये । दोनोंने अपना स्वप्न एक दूसरेको सुनाया–एक ही समयमें दोनोंको एक ही स्वप्न हुआ था ।

यह सच्ची घटना है और जिनको ऐसा अनुभव हुआ है, वे शायद जीवित हैं। बात इतनी ही है कि श्रीराधारानी, श्रीकृष्ण केवल विश्वास देखते हैं, फिर जैसे भरपेट भोजन देकर उनको अतिथिके रूपमें स्वीकार कर लिया, वैसे ही सच्चे विश्वासके साथ उनका दर्शन चाहनेवाले, उनकी लीलाको देखकर कृतार्थ होनेकी इच्छा रखनेवालेको वे अतिथि बनाकर उसका वैसा ही अतिथिसत्कार कर सकते हैं । उनके लिये सभी समान हैं, किसीके प्रति भेदभाव नहीं है । अतः आप यदि अनन्य मनसे आतुर होकर श्रीकृष्णसे, श्रीराधारानीसे चाहें कि 'बस, आपका निरन्तर चिन्तन हो, निरन्तर आपकी लीला सुननेको मिले, तो सच मानिये, देरका काम नहीं है । अवश्य इस प्रार्थनाको वे सुनेंगे । पर प्रार्थना सच्ची हो तब । जबतक आपकी प्रार्थना सच्ची न हो, तबतक झूठे ही मनसे बार–बार कहते रहिये। झूठी प्रार्थनाको भी वे कृपा करके समयपर सच्ची बना देते हैं ।

आपकी यह चाह बड़ी उत्तम है कि निरन्तर श्रीकृष्णका स्मरण बना रहे और लीला सुननेको मिले । यह बहुत ही उत्तम चाह है । बस, चाहते चले जाइये, झूठी–सच्ची जैसी भी चाह हो–चाहते ही चले जाइये । चाह बनी रहेगी तो वह कभी सच्ची भी हो जायगी और किसी–न–किसी दिन पूर्ण कृपाका प्रकाश होगा ही ।

श्रीगोपियाँ उद्धवजीसे कहती हैं––

जो राधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

नाहिन रह्यो हिय मैं ठौर ।
नंदनंदन अछत कैसैं आनिये उर और ।।
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात ।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात ।।
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक–लाज दिखाय ।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समाय ।।
श्याम–गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास ।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास ।।

इस पदके आधार पर ऐसी भावना कीजिये कि सचमुच सामने उद्धव–लीला हो रही है तथा एक प्रेम–रसनिमग्ना व्रजसुन्दरी कह रही है––'उद्धव ! क्या करूँ, तुम्हारी बात ठीक है, पर हृदयको तुम देख लो;इसमें तो केवल श्यामसुन्दर–ही–श्यामसुन्दर भरे हैं ! मैं चाहूँ, तो भी क्या करूँ, जब कि जगह ही नहीं बच रही है । उद्धव ! तुम्हीं बताओ, प्रियतम प्राणनाथ श्यामसुन्दरको छोड़कर उनकी जगह दूसरे किसीको कैसे बैठाऊँ? मेरे श्यामसुन्दरने मेरे हृदयको चारों ओरसे घेरकर छा लिया है, उनके रहते हृदयमें दूसरेको कैसे बैठाऊँ ? नहीं–नहीं, उद्धव ! असम्भव है । प्राण भले ही चले जायँ, पर अब इस हृदयमें दूसरेका प्रवेश नहीं हो सकता, यहाँ तो बस, नित्य–निरन्तर श्यामसुन्दर ही रहेंगे ।'

'उद्धव ! तुम्हे विश्वास नहीं होगा––वह मूर्ति, प्यारे श्यामसुन्दरकी मूर्ति कभी एक क्षणके लिये भी हृदयसे नहीं हटती । मैं चलती हूँ, उस समय भी श्यामसुन्दरकी छवि मेरे हृदयमें रहती है । मैं जिस क्षण अपनी दृष्टिको बाहर किसी और पदार्थकी ओर ले जाती हूँ तो देखती हूँ, वहाँ भी मेरे श्यामसुन्दरकी छबि है, हृदयमें भी, बाहर भी केवल श्यामसुन्दर ही दीखते हैं । दिनभर जबतक जागती रहती हूँ, तबतक श्यामसुन्दर, एकमात्र श्यामसुन्दर ही नजरोंके सामने रहते हैं । रातमें जिस क्षण सोनेकी चेष्टा करती हूँ, उस समय भी श्यामसुन्दरका तिरछी चितवनयुक्त मुखारविन्द सामने रहता है । स्वप्न देखने लगती हूँ, देखती हूँ–श्यामसुन्दर आये हैं, मेरे सामने खड़े हैं, मेरी ओर तिरछी चितवनसे देख रहे हैं। मैं पकड़ने दौड़ती हूँ, वे पीछे हटने लग जाते है; मैं सहम जाती हूँ वे भी खड़े हो जाते हैं । फिर पकड़नेके लिये दौड़ती हूँ, फिर भागने लगते हैं । इस प्रकार उनको न पकड़ पानेपर मैं जब रोने लगती हूँ, तब बस, हँसते हुए आकर मुझे हृदयसे लगा लेते हैं । आँखें खुल जाती हैं– मैं देखती हूँ, विचार करती हूँ, स्वप्न था; पर फिर सामने देखती हूँ,–नहीं, नहीं, वे तो सामने खड़े हैं, ये हैं, ये हैं । इस

प्रकार उद्धव ! एक क्षणके लिये भी श्यामसुन्दरकी वह घुँघराली अलकोंवाली छबि मेरे मनसे नहीं हटती । उद्धव ! एक क्षणके लिये भी प्यारे श्यामसुन्दरके सिवा और कोई वस्तु नजर ही नहीं आती । नाराज मत होना—–तुम श्यामसुन्दरके प्यारे सखा हो, तुम्हारी बात मैं नहीं सुन पा रही हूँ, पर न सुननेके लिये लाचार हो गयी हूँ । उद्धव ! कोई उपाय नहीं रह गया है । उद्धव ! न जाने श्यामसुन्दरने तुम्हें सिखाकर भेजा है या तुम अपने मनसे ही इस योगकी बात सुना रहे हो; पर कुछ भी हो, तुम्हीं सोचो, हम गाँवकी ग्वारिनें योग लेकर क्या करेंगी । सचमुच तुम भूलते हो, तुम ठगा गये हो; अरे, तुम जिस श्यामसुन्दरकी बात सुना रहे हो, उसके हृदयकी बात ही तुम नहीं जानते । तुम कहते हो–श्यामसुन्दर सर्वेश्वर हैं, समस्त संसारके एकमात्र स्वामी हैं ।' तुम्हें पता नहीं, वही सर्वेश्वर, वही अखिल ब्रह्माण्डनायक अपने आपको व्रजमें आकर भूल गया । तुम्हें एक दिनकी बात सुनाती हूँ, तुम चकित रह जाओगे । विश्वास करो, उद्धव ! वे मेरे प्रियतम प्राणनाथ हैं । मेरा सब कुछ उनका है और उनका सब कुछ मेरा है । तुम्हें सुनाती हूँ–

'मथुरा जानेके कुछ ही दिनों पहले मैं उनसे रूठ गयी थी । श्यामसुन्दरके सखा ! मैं देखना चाहती थी, उस दिन हृदय खोलकर देखना चाहती थी, मेरे प्रियतम मुझे कितना प्यार करते हैं । आँखोंके सामने श्यामसुन्दर थे और मैं मुँह फेरकर बैठ गयी । वे आये, बड़े प्रेमसे मेरे हाथों को पकड़कर बोले–'प्रियतमे अपराध क्षमा करना, मैं देरसे आया; तुम मेरी प्रतीक्षामें व्याकुल थी; पर क्या करूँ ? तुम्हारा ध्यान करते–करते मैं भूल गया था कि मैं तुमसे दूर हूँ; मैं तुम्हें पास ही अनुभव कर रहा था, सब कुछ भूलकर तुम्हें ही देख रहा था । विश्वास करो, मेरी प्राणेश्वरी ! मेरे हृदयमें तुम्हारे सिवा और किसीके लिये तिलभर भी जगह नहीं; तुम मेरी जीवन हो, तुम मेरी प्राण हो, प्रिये ....' उद्धव ! अब बोला जाता नहीं, कण्ठ भर आया; अब आगे तुम्हें उस दिनकी बात नहीं सुना सकूँगी । मेरे प्यारे श्यामसुन्दरकी उस दिनकी झाँकी, उस दिनकी लीला तुम्हें अब आगे नहीं सुना सकूँगी, चाहनेपर भी तुम्हें नहीं सुना सकूँगी । नाराज मत होना, सुननेपर भी तुम समझ नहीं सकोगे । उद्धव ! उद्धव ! बस, बस, इतना ही कहती हूँ कि तुम ठगे गये–मेरे प्रियतमके हृदयकी बात, हृदयका रहस्य तुम नहीं जान सके। तुम्हारे सर्वेश्वरके हृदयमें क्या–क्या है, वे इसे नहीं जानते । उद्धव ! उनका हृदय ओह! क्या बताऊँ; वह तो मेरे पास है । यह देखो, देख सको तो देखो; तुम्हारा सर्वेश्वर यहाँ मेरे हृदयमें क्या कर रहा है; पर तुम अभी नहीं देख सकोगे । जाने दो, उद्धव ! हम गँवारी ग्वालिनोंको मरने दो, श्यामसुन्दरका नाम ले–लेकर

मरजाने दो । उद्धव ! उद्धव ! तुम भूलते हो–लोक–लाजको, कुलकानको, यश–अपयशको तो आजसे बहुत पहले मैं जला चुकी हूँ; सबको भस्म कर चुकी हूँ। वे सब–के–सब न जाने कभीके जलकर खाक हो गये और बह गये उस अजस्र धारामें, श्यामसुन्दरके प्रेमकी प्रबल रसधारामें । उनकी गन्ध भी नहीं बच रही है । उद्धव ! यदि तुम देख सकते तो देख पाते कि मेरे हृदयमें क्या भरा है, प्यारे सखा ! श्यामसुन्दरके सखाके नाते तुम मेरे भी सखा हो; पर सखा ! क्या करूँ, तुम्हारी आँखें वहाँ नहीं पहुँच रही हैं । देखो, मेरे शरीरके सूखे ढाँचेके भीतर दृष्टि ले जाओ–वहाँ देखो, देखो, केवल श्यामसुन्दरका प्रेम–समुद्र लहरा रहा है, तरंग–पर–तरंग उठ रही है । उनमें मैं हूँ और श्यामसुन्दर हैं, दोनों ही उस असीम अगाध प्रेम समुद्रके अतल तलमें डूबे हुए हैं। वहाँ और कोई नहीं है, केवल मैं हूँ और मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर ! वह देखो, मैं श्यामसुन्दर बन गयी, श्यामसुन्दर ...... ओह, तुम नहीं देख पाते । क्या करूँ, जाने दो ।'

'उद्धव ! उस प्रेम–समुद्रमें डूबे हुएको, बिल्कुल तलमें जाकर विलीन हो जानेवालेको तुम बाहर लाना चाहते हो ? प्रेमके समुद्रको तुम घड़ेमें अँटाकर रखना चाहते हो? सोचो, कितनी भूल कर रहे हो, देखो, उद्धव ! तुम चाहो, मैं चाहूँ तो भी समुद्र घड़ेमें नहीं समा सकता ! अरे, मैं पगली हो गयी हूँ––क्या कहते–कहते क्या कह जाती हूँ ! मैं भूल गयी, उद्धव ! बस इतना ही कहना है, व्यर्थकी चर्चा हमें मत सुनाओ । हम ग्वालिनें योगकी बात, ज्ञानकी बात सुनकर क्या करेंगी ? अजी, तुम हमें ठगने आये हो ? नहीं, नहीं, उद्धव ! ठग नहीं सकोगे, तुम्हारा यह योग हमें भुला नहीं सकेगा । तुम्हार यह ज्ञान हमें भुला नहीं सकेगा । मैं चाहूँ तो भी नहीं भूल सकती ।'

'सुनो, प्यारे सखा ! बड़ी छिपी बात बतलाती हूँ । आजसे बहुत दिन पहले श्यामसुन्दर आये थे, उन्होंने मेरे इस शरीररूपी घड़ेको अपने प्रेमसे भर दिया। भरकर फिर क्या किया, बताऊँ ? स्वयं रसरूप होकर बाहर–भीतर, नीचे–ऊपर, दाहिने–बायें, सब जगह पहरा देने लगे । उद्धव ! प्यारे उद्धव !! मेरे सूखे शरीरके भीतर देखो, तब पता चलेगा–देखो, श्यामसुन्दर रसरूप होकर भीतर भरे हैं । यह शरीरका घड़ा भरा है प्रेमसे, और सर्वथा सब ओरसे बंद है। इसे तुम क्षारसमुद्रमें, योगकी खारी चर्चामें डुबाना चाहते हो ? यह भी कभी सम्भव है ? उद्धव ! इस प्रयासको छोड़ दो । यह प्रेमका घट तुम्हारे योगके खारे समुद्रमें कभी डूबनेका नहीं है । यह तो डूबेगा श्यामसुन्दरके मधुर सुधामय प्रेमसमुद्रमें । स्वयं श्यामसुन्दर आयेंगे, स्वयं इसका मुँह खोलकर इसे अपनेमें मिलाकर एक कर लेंगे। प्यारे सखा ! उपाय नहीं है । लाख प्रयत्न करो, श्यामसुन्दरके हाथोंसे भरा हुआ

प्रेममय घट, अमृतमय घट तुम्हारे योगके खारे समुद्रमें डूबेगा ही नहीं । ओह ! मैं सचमुच पागल हो गयी हूँ, क्या-क्या बक रही हूँ । क्षमा करना प्यारे सखा ! मैं होशमें नहीं हूँ, यह पगलीका प्रलाप है । मेरे जले हुए--झुलसे हुए हृदयमें ज्ञान नहीं बच गया है कि मैं विचारकर तुमसे बात करूँ । कभी कुछ, कभी कुछ बकती ही चली जा रही हूँ ।'

'प्यारे श्यामसुन्दरके सखा ! तुम देख नहीं पाओगे; पर यदि देख पाते तो देखते कि श्यामसुन्दर यहाँसे कभी कहीं गये ही नहीं, एक क्षणके लिये भी कहीं बाहर नहीं गये । वे यहीं हैं, सदा यहीं रहते हैं और यहीं रहेंगे। मैं रहूँगी और मेरे प्रियतम रहेंगे । अनन्त कालतक रहेंगे । अभी-अभी कलकी बात है । तुम्हें सुनाती हूँ, कल सायंकालकी बात है । मेरे प्रियतम प्राणनाथ वनसे गाय चराकर लौट रहे थे । मैं उस क्षण घरके भीतर बैठी थी, अनुभव कर रही थी कि श्यामसुन्दर तो पास ही हैं । इतनेमें वंशी बजी, चेत हुआ, सोचा, भ्रम हो गया है, श्यामसुन्दर तो गाय चराकर अभी लौट रहे हैं । मैं सुनने लगी उस मुरलीकी मधुर ध्वनिको । मेरे नाथ, मेरे प्राणबन्धु मेरा नाम ले-लेकर मुरलीमें सुर भर रहे थे । बाहर आयी, देखा-आह ! कैसी अनुपम छबि थी । नील कमलके समान सुन्दर मुखारविन्द था, श्याम मेघके समान समस्त शरीर संध्याकालीन सूर्यकी रश्मियोंमें झलमल-झलमल कर रहा था, मुखपर धूलिके कण उड़-उड़कर पड़ रहे थे, स्वेदकी कुछ बूँदें झलक रही थीं, घुँघराली अलकें बार-बार मुखपर आ जाती थीं और मेरे प्यारे श्यामसुन्दर उन अलकोंको बार-बार बायें हाथसे हटाते रहते थे। आह, उन आँखोंकी शोभा क्या बताऊँ ! तुरंतका खिला कमल उस शोभाके सामने फीका पड़ जाता था । मेरे हृदयेश्वर बार-बार तिरछी चितवन डालकर मुझे देख लेते थे । मैं देख रही थी और वे मस्तानी चालसे, अत्यन्त मधुर चालसे चलते हुए मेरी ओर ही आ रहे थे। उद्धव ! उद्धव !! मैं मूर्च्छित होती जा रही थी, मुझपर उनकी मनोहर मुसकान जादूका काम कर रही थी । इतनेमें ही वे बिल्कुल मेरे पाससे होकर निकले । मित्र ! क्या बताऊँ ? रोक न सकी मैं अपनेको; उनमें मिल जानेके लिये, अपने-आपको उनमें मिला देनेके लिये दौड़ पड़ी । वे हँसने लगे, हँसते-हँसते लोट-पोट-से होने लगे । अपने सखा सुबलको उन्होंने कुछ संकेत किया, मैं कुछ सहमी, वे कुछ हँसकर आगे बढ़े, मैं भी आगे बढ़ी । मैं और वे दोनों आमने-सामने थे । मैं झमूरेकी तरह नाच रही थी वे आगे बढ़ते, मैं आगे बढ़ती; वे पीछे हटते, मैं पीछे हटती; वे हँसते, मैं हँसती । इस प्रकार न जाने कितनी देर हमलोग खेलते रहे । पर मैं अब अपनेको सम्हाल न सकी । मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरने ही जा रही थी, बस गिर ही चुकी थी कि मेरे प्राणनाथ दौड़े आये

और उन्होंने अपनी सुकुमार भुजाओंका सहारा देकर मुझे बैठा दिया । पास ही मेरी सखी खड़ी थी, उसे संकेत करके उन्होंने कहा–री! नेक इस बावलीको सम्हाल ।' उद्धव !...... अब आगे कुछ कहते नहीं बनता, बस, उस आनन्दको व्यक्त करनेकी शक्ति नहीं । आह, अद्धव ! मेरे प्यारे सखाके...... मैं भूल गयी हूँ, अपने–आपको भी भूल जाती हूँ ।'

'नहीं, नहीं, मित्र ! श्यामसुन्दर तो मथुरा गये हुए हैं, कल नहीं, कुछ दिन पहले ऐसी घटना हुई थी । सचमुच उद्धव ! मैं भूल गयी थी, सोच रही थी कि कल ही वह घटना घटी थी, इसलिये सुनाती गयी । पर प्यारे सखा ! प्यारे श्यामसुन्दरके सखा ! मोहनके सखा ! वह घटना रोज ठीक शाम होते ही आँखोंके सामने नाचने लगती है । ठीक–ठीक अनुभव करती हूँ, वैसे ही हो रहा है । अब कुछ होश हुआ है, सोचती हूँ–प्राणनाथ मथुरामें हैं, मैं तो पगली हो रही हूँ, इसीलिये उन्हें पास अनुभव करती हूँ । जो हो, मित्र ! वह मुखसरोज, वह श्याम मेघ–सा शरीर, वे कमलके समान नेत्र, वह मस्तानी चाल, उनकी वह मोहन मुसकान कभी भूली नहीं जाती । निरन्तर वे ही, वे ही आँखोंके सामने नाचते रहते हैं । प्यारे मित्र ! श्यामसुन्दरके सखा ! मेरे प्राणनाथका हृदय अत्यन्त उदार है, उसमें निष्ठुरता नामको भी नहीं है । उन्हें मेरी दशाका पता नहीं, इसीलिये वे देर कर रहे हैं । इसीलिये प्यारे उद्धव ! मैं हाथ जोड़कर एक भीख माँगती हूँ, एक विनय करती हूँ–– इतनी ही कृपा, बस, इतनी कृपा करना; जाकर मेरे श्यामसुन्दरसे, मेरे प्राणनाथ, मेरे हृदयेश्वरसे कह देना–आँखें तरस रही हैं, झुलसती जा रही हैं, उसी मुखसरोजको, उसी श्यामसुन्दर शरीरको ही, कमलदल–से नेत्रोंको, उसी ललित मस्तानी चालको, उसी मन्द मुसकानको आँखें खोज रही हैं। आँखोंको बस, इतनी ही प्यास है। प्यारे उद्धव ! मेरी ओरसे कह देना–बस, एक बारके लिये, एक ही बारके लिये, वही झाँकी कराकर वे फिर भले ही मथुरा चले जायँ, खूब सुखसे रहें ! एक बार बस, एक बार दासीके नयनोंकी प्यास बुझाकर चले जायँ । उद्धव ! इतनी ही भीख तुमसे माँगती हूँ–तुम मेरे प्राणनाथको, मेरे हृदयेश्वरको मेरे हृदयका यह संदेश सुना देना ।'

मन लगाना कोई बड़ी बात नहीं है । कई बार कहा जा चुका है कि यदि आप सचमुच व्रजलीलामें मन लगाना चाहेंगे तो श्रीकृष्णकी कृपासे यह इतना आसान है कि बस, चकित रह जाइयेगा । सोचिये–यमुना है, यमुनाका जल हवाके झोकोंसे हिल रहा है, इसका बीस सेकंड चिन्तन कीजिये । फिर देखिये––सुन्दर घाट हैं; नीलम, पन्ने, माणिक्यसे जड़ा हुआ घाट संध्याकालीन सूर्यकी किरणोंमें चम–चम कर रहा है, इसमें भी बीस सेकंड लगाइये । फिर देखिये––घाटकी चार

सीढ़ियाँ है, एक, दो, तीन, चार ...... इस प्रकार सीढ़ियोंको गिननेमें बीस सेकंड। फिर देखिये–घाटपर व्रजसुन्दरियाँ घड़े भर रही हैं । घड़ोंमें पानी भर रहा है, यमुनाके जलसे घड़े भर रहे हैं––इसके चिन्तनमें बीस सेकंड । फिर देखिये––व्रजसुन्दरियाँ घड़ोंको सिरपर उठा–उठाकर रख रही हैं, इस उठानेकी कियाको बीस सेकंडतक देखिये । फिर सोचिये, दूरपर श्रीकृष्ण खड़े हैं और गोपियाँ आपसमें उनकी ओर इशारा कर रही हैं । इस इशारेकी कियामें बीस सेकंड । इस प्रकार अनन्त चीजें आपको मिलेंगी, जिनमें मनको निरन्तर फँसाये रख सकते हैं । कभी कुछ, कभी कुछ, कभी कुछ । फिर होगा यह कि आपका मन ही वृन्दावन बन जायगा । वहाँ दिन–रात मधुरतम लीला चलती रहेगी । यहाँ भले ही प्रलय होता रहे, पर आपका मन मधुर वृन्दावनमें सैर करता रहेगा; किंतु चाह रखकर, लगनसे, तत्परतापूर्वक करनेसे यह होगा । फिर कुछ भी हो, आपका शरीर और मन सब वृन्दावनमें हैं, आपको क्या फिक्र है ? भावना दृढ़ होनेपर बड़ी सुन्दर अनुभूति होगी । दाहिने दृष्टि डालियेगा, ऐं, यहाँ तो मेंहदीकी कतार है । बायें देखियेगा, ऐं, यहाँ तो जूही–बेला खिल रहे हैं । पीछे देखियेगा –– यहाँ तो यमुना लहरा रही हैं, और सामने –– यहाँ तो श्रीराधाजीका महल है। यही आकाश आपको वृन्दावनका आकाश दीखेगा।

बस ! फिर क्या है, कुछ ही कालमें श्रीकृष्ण ऐसी कृपा करेंगे कि यहीं इसी नश्वर, क्षणभंगुर, दुःखालय संसारके अन्तरालसे, इसके कण–कणके भीतरसे श्रीकृष्ण और उनका लीला–राज्य इस प्रकार अभिव्यक्त हो उठेगा, जैसे यह संसार कभी था ही नहीं, है नहीं और होगा भी नहीं । आप निहाल हो जाइयेगा। बस, मेरा तो इतना ही कहना है कि बढ चलिये । भगवान्‌की कृपासे असंभव संभव हो सकता है । विश्वास रखिये ।

राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२९

तत्त्व–निर्णयके झगड़ेमें कभी नहीं पड़ें

रतनगढ़

१ जनवरी १९४२

श्रीशिवभगवानजी फोगला ।

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि आपको लीलायें सुननेसे बहुत तृप्ति एवं शान्ति मिलती है, मन बराबर लीलायें सुननेको व्याकुल रहता है, सो बहुत उत्तम बात है । देखिये गोपियोंकी कैसी सुन्दर रहनी है । जैसे ही संध्या होती है, बस वैसे ही गोपियाँ श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये अपने प्राणोंकी व्याकुलता लेकर अपना श्रृंगार प्रारंभ करती हैं। परन्तु उनका यह श्रृंगार कभी भी अपने सुखके लिये नहीं होता । उनके मनमें अपने सुखकी कोई वासना ही नहीं होती । गोपीप्रेमका यही विशेषत्व है, वहाँ अपने सुखकी कामनाकी गन्ध भी नहीं है । उन प्रेमवती व्रज–सुन्दरियोंके जीवनकी समस्त चेष्टाएँ एकमात्र इसी उद्देश्यसे स्वभावतः होती हैं कि हमारे प्रियतम श्रीकृष्णको सुख पहुँचे । उन्हें चेष्टा नहीं करनी पड़ती, यह उनका स्वभाव बना हुआ है । अतः उनका अपने शरीरको सजाना भी अपने लिये बिल्कुल नहीं होता। अस्तु, संध्या होते ही व्रजसुन्दरियाँ अपनेको सजाना आरम्भ करती हैं; पर यह सजाना जहाँ आरम्भ हुआ कि उसी क्षण श्रीकृष्णकी गाढ़ स्फूर्ति होकर वे इस बातको भूल जाती हैं कि मैं कहाँ हूँ, क्या कर रही हूँ। उन्हें ऐसा अनुभव होता है – यह सामने, बिल्कुल मेरे सामने मेरे प्रियतम खड़े हैं, मुझसे थोड़ी ही दूरपर खड़े हैं । फिर थोड़ा बाह्यज्ञान होता है, सजाना आरम्भ करती हैं, पर सजाने जाकर अपने–आपको विचित्र बना लेती हैं । ओढ़नीको पहन लेती हैं, साड़ीको ओढ़ लेती हैं, आँखोंमें लगानेका काजल तो चरणोंमें लगा लेती हैं और चरणोंमें लगानेका महावर आँखोंमें लगा लेती हैं । कानकी बालीको नाकमें पहन लेती हैं और नाकके बुलाकको कानमें पहन लेती हैं । गलेका हार कमरमें एवं कमरकी करधनीको गलेमें धारण कर लेती हैं । इस प्रकार उनका वेष विचित्र बन जाता है– किसी दिन कैसा, किसी दिन कैसा; प्रतिदिन ही कुछ–न–कुछ गड़बड़ी हो ही जाती है । परंतु

श्रीकृष्ण उनके इस वेषको देखकर अप्रसन्न होनेकी बात तो कल्पनासे भी दूर है, प्रेमानन्द–रस–सागरमें डूब जाते हैं । उनको देखकर श्रीकृष्णकी आँखोंसे विमल प्रेमकी अश्रुधारा बहने लगती है । वे अपने हाथोंसे उन गोपसुन्दरियोंके वस्त्र–आभूषण ठीक करते हैं, उन्हें यथास्थान पहना देते हैं। यह है प्रेमकी महिमा–इसमें बाहरके साज–श्रृंगारके लिये कोई स्थान नहीं है । श्रीकृष्ण तो हृदयके प्रेमका रसास्वादन करते हैं, बाहरका रूप उनकी आस्वाद्य वस्तु नहीं है। उनकी आस्वाद्य वस्तु है–प्राणोंकी व्याकुलतासे भरा निर्मल प्रेम ।

साधक साधना प्रारम्भ करता है, तब उसके मनमें यही बात–एकमात्र यही लक्ष्य रहता है कि मेरे प्रभु जिस बातसे प्रसन्न हों, वही करना है । वह पहले प्रत्येक चेष्टा भलीभाँति विचार–विचारकर करता है कि वे अधिक–से–अधिक किस बातसे प्रसन्न होते हैं । फिर यह उसका स्वभाव बनता चला जाता है । इस बातके लिये ही पहले उसकी प्रार्थना होती है–'मेरे नाथ ! मैं तुम्हारे हाथोंका यन्त्र बन जाऊँ ।' यह प्रारम्भमें होता है–आगे तो प्रेमीकी ऐसी दशा होती है कि उसे केवल वही जानता है ।

यह सिद्धान्ततः ठीक है कि महापुरुषोंको साक्षात् भगवान् मानकर उनके चरणोंमें न्योछावर होनेसे भगवत्–प्रेमकी प्राप्ति बड़ी शीघ्रतासे होती है। पर किसी मनुष्य–विशेषके प्रति प्रथम तो भगवद्बुद्धि होना कठिन है; हुई भी तो वह आगे चलकर हट सकती है और इसप्रकार अपराध बननेसे उसकी उन्नति रुक सकती है; और कहीं वह आदमी, जिसमें भगवद्बुद्धि की गयी, भगवत्प्राप्त न हो (अधिकांशमें ऐसा ही होता है, भगवत्प्राप्त महात्मा तो बिरल ही होते हैं), साधक मात्र है, तो उससे कोई खास लाभ नहीं होता और यदि ऊपरसे बना–बना हुआ प्रेमी हो, तब तो निश्चय ही साधकके लिये पश्चात्ताप होनेके लिये अवकाश है । इसलिये सर्वोत्तम, सबसे श्रेष्ठ निर्भय मार्ग यह है कि भगवान्‌के चरणोंमें जीवनको समर्पित करके उनका पवित्र मधुर स्मरण, उनका प्रेममय भजन तथा सत्संगमें रहकर जीवन बिताते हुए समस्त विश्वको ही अपने इष्टका रूप समझकर यथायोग्य सबकी सेवा की जाय । यही आत्मसमर्पणकी तैयारी है । फिर पूर्ण आत्मसमर्पण तो भगवान् कराते हैं।

एक और आवश्यक प्रार्थना यह है कि जीवनमें किसीको तत्त्व–निर्णयके झगड़ेमें नहीं पड़ना चाहिये। ऐसा करनेवालोंका रास्ता प्रायः बंद–सा हो जाता है; क्योंकि वास्तविक तत्त्व तो अनिर्वचनीय है । श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपीजन, उनका प्रेम और उनकी परम पवित्र लीला मन–वाणीके विषय नहीं हैं । जो भी वाणीसे कहा जाता है, शास्त्रोंमें सुननेको मिलता है, वह तो शाखा–चन्द्रन्यायकी भाँति

संकेत है । भक्तको चाहिये कि वह सिद्धान्त–निर्णयके फेरमें बिलकुल न पड़कर सरल श्रद्धासे आत्मसमर्पणकी तैयारी–श्रीकृष्ण, श्रीराधारानीके चरणोंमें न्यौछावर हो जानेकी तैयारी करे । वह केवल तैयारी ही कर सकता है; असली आत्मसमर्पण तो होगा तब, जब श्रीकृष्ण स्वयं इस आत्मसमर्पणको स्वीकार करेंगे । उसके पहले प्राणोंकी समस्त व्याकुलता लेकर तैयारी करनी होगी कोई ज्ञानी कहे कि ब्रह्म–प्राप्ति ही सबसे ऊँची स्थिति है तो उसमें भगवद्‌भाव करके, प्रभु हमारी परीक्षा ले रहे हैं–यों समझकर उसे प्रणाम करके उपरत हो जाना चाहिये, भूलकर भी कभी वाद–विवाद या बहस नहीं करनी चाहिये । करने चाहियें केवल दो काम–जीभसे अखण्ड नामोच्चारण एवं मनसे अखण्ड श्रीकृष्ण–लीलाओंका चिन्तन! इसमें जो सहायक हों, उन्हें जोड़ते चले जाना चाहिये । बाधक हों, उन्हें तुरंत फेंकते जाना चाहिये ।

एक ही भगवान् अपनेको दो रूपोंमें बाँटकर लीलाका आस्वादन करते हैं। श्रीराधाजी श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही राधिकाजी हैं । उनमें सर्वथा सब ओरसे नित्य एकत्व ही है । ऐसा होते हुए भी अनादिकालसे लीलाका आस्वादन करनेके लिये श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाके रूपमें वे नित्य सच्चिदानन्दमय, रसमय प्रेमका घनीभूतविग्रह धारण किये हुए हैं । श्रीगोपियाँ श्रीराधाकी ही कायव्यूहरूपा हैं, अर्थात् स्वयं श्रीराधाजी ही श्रीकृष्णको लीला–रसका आस्वादन करानेके लिये अनन्त गोपीरूप धारण किये हुए हैं तथा अनादिकालसे वह सच्चिदानन्दमयी लीला–श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं श्रीगोपीजनकी लीला चल रही है, अनन्तकालतक चलती रहेगी । साधनाके द्वारा मनुष्य पहले इन लीलाओंका प्रत्यक्ष दर्शन करता है, फिर भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा होनेपर ही उस लीलामें स्वयं भी सम्मिलित हो जाता है । इस दुर्लभ लीलाका दर्शन किसी–किसी ज्ञानयोगीको भी ब्रह्मप्राप्तिके बाद ही होता है । पर प्रेमपंथी भक्तके लिये भगवान्‌की कृपासे सीधा रास्ता निकल जाता है और वह बिल्कुल सीधे एक विलक्षण ढंगसे इस लीलाका दर्शन करके कृतार्थ हो जाता है । इसे इस प्रकार समझ सकते हैं ।

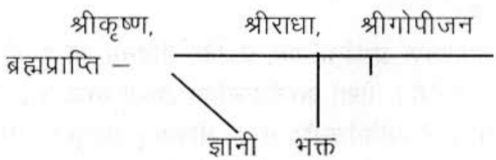

श्रीराधाजी श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, हृदय हैं अर्थात् श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा दोनों सर्वथा सब प्रकारसे एक ही हैं । लीलाके लिये दो रूपोंमें अनादिकालसे बने हुए

हैं और अनन्त कालतक बने रहेंगे ।

श्रीकृष्णका स्वरूप है सत्–चित्–आनन्द । सत्में संधिनीशक्ति रहती है; चित्में चितिशक्ति (ज्ञानशक्ति) रहती है तथा आनन्द–अंशमें ह्लादिनी श्रीराधा हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण जो सत्–चित्–आनन्द हैं, वे ही वृन्दावन बने हुए हैं, वे ही योगमाया बने हुए हैं और वे ही श्रीराधा बने हुए हैं तथा श्रीराधा ही अनन्त गोपियाँ बनी हुई हैं और यही सत् –चित्–आनन्दमयी लीला अनादि कालसे चल रही है एवं अनन्त कालतक चलती रहेगी ।

वृन्दावन, योगमाया, श्रीराधा एक ही श्रीकृष्णकी तीन शक्तियाँ, तीन रूपोंमें हैं । असली बात तो श्रीकृष्ण जानें, पर मैंने एक दिन निवेदन किया था कि उसी सत्–चित्–आनन्दमयी लीलाकी छाया यहाँ पड़ती है और वही छाया इस विश्वके रूपमें दीखती है । यहाँके स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी, वन, पर्वत, समुद्र, नदी–सब उसी दिव्य सत्–चित्–आनन्दमय दिव्य राज्यकी छाया हैं ।

व्रजप्रेमकी प्रत्येक लीलामें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि वहाँ किसी भी गोपीके मनमें अपने सुखकी बिल्कुल इच्छा नहीं रहती तथा वहाँके जो श्रीकृष्ण हैं, वे ऐसे नहीं हैं कि उनको सुख नहीं चाहिये । वहाँ उनकी भगवत्ता छिपी रहती है तथा प्रत्येक गोपी यह समझती है कि श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम प्राणवल्लभ हैं, इनको सुख होता है, दुःख होगा । व्रजसुन्दरियोंकी चेष्टाओंमें यह भाव नहीं होता कि हमें सुख मिले; अपने–से–अपने जो प्राणबल्लभ हैं, उनको सुख कैसे मिले–केवल यही इच्छा रह जाती है ।

यह भी यहाँ समझनेकी बात है कि वृन्दावनमें जो चिन्मयलीला होती है, वहाँ जो गोपियोंके पति हैं, वे भी हाड़–मांसवाले नहीं हैं, वे तो श्रीकृष्णकी ही एक–एक मूर्ति हैं । पति–रूपमें भी श्रीकृष्ण ही रहते हैं । पर पतिसे इनका कुछ भी कभी भी बिल्कुल कोई सम्बन्ध नहीं होता । यहाँ तो गोपियाँ पतितकका त्याग करके श्रीकृष्णको भजती हैं, यह लीला दिखलानी है, इसीलिये यद्यपि स्वयं श्रीकृष्ण ही उनके पति हैं, पर उस रूपमें उनके साथ उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। वह लीला कुछ इतनी विचित्र है कि वाणीसे समझायी नहीं जा सकती। किसी दृष्टान्तसे भी समझाना बड़ा कठिन ही नहीं, असम्भव–सा है । मान लीजिये, जैसे स्त्री–पुरुषका एक जोड़ा है । उनका गुप्त–रूपसे विवाह हो जाय, पर इस बातका किसीको पता लगे नहीं । अब स्त्री तो पतिव्रता है, वह पर–पुरुषका मुँह भी नहीं देख सकती, बात करना तो दूर रहा । अब वह प्रेममें पागल हो जाय । लोगोंको तो यह मालूम नहीं कि इसका विवाह हो गया है । इसलिये उसी पागलपनकी अवस्थामें उसका विवाह फिरसे किसीके साथ कर दिया जाय । उसे पता भी न

चले । कुछ दिन बाद उसे जब कुछ होश होता है, तब क्या वह अपने पहले पतिको छोड़कर दूसरे का मुँह भी देख सकती है ? कुछ–कुछ इस दृष्टान्तसे श्रीगोपीजनोंके प्रेमके स्वरूपका अनुमान हो सकता है । असली बातको समझना, बिना दर्शन हुए कठिन है ।

बहुत–सी ऐसी बातें हैं कि जिनकी दिव्यताको मलिन मनका प्राणी कदापि समझ ही नहीं सकता । आप पढ़ चुके होंगे भागवतमें–श्रीकृष्ण किसी गोपीका चुम्बन करते हैं, किसीका हृदय स्पर्श करते हैं । पर ये सभी लीलाएँ इतने परेके स्तरकी हैं, इतने ऊँचे दिव्यराज्यकी हैं कि जबतक मनुष्यकी सारी कामवासना सर्वथा मिटकर मन एवं आँखें दोनों चिन्मय न हो जायँ, तबतक वह समझ ही नहीं सकता कि असलमें क्या रहस्य है । संसारमें भी देखा जाता है कि पिता अपनी छोटी पुत्रीका मुख चूमता है । बहिन भाईका हृदयस्पर्श करती है । बेटीको बाप हृदयसे चिपका लेता है; पर क्या वहाँ कभी कामविकारकी कल्पना भी होती है? फिर सच्चिदानन्दमय दिव्य पवित्रतम भगवत्–प्रेम–राज्यमें कितनी निर्विकार तथा सर्वथा भगवन्मयी लीला होती होगी, इसका जरा अनुमान करना चाहिये । वहाँ स्त्रीका अंग दीखता मात्र है, असलमें तो वह सर्वथा सब ओरसे चिदानन्दमय है । वहाँ जड़ताकी, कामकी तो गन्ध भी नहीं है । वहाँ उस लीलाके पढ़नेका इतना माहात्म्य है कि पढ़नेवाला यदि श्रद्धासे पढ़ेगा तो उसका काम–विकार नष्ट हो जायगा ।

इस व्रजलीलाका भी एक रूप नहीं है । एक–से–एक बढ़कर ऊँचे–से–ऊँचे स्तरकी लीला होती है। अब कंई लीलाएँ इतनी मधुर होती है कि उनमें श्रीकृष्ण अपनी भगवत्ताको सर्वथा छिपाकर लीला करते हैं । उन बातोंको पढ़कर साधारण आदमी तो यही समझेगा कि यह तो किसी कामी पुरुषकी बात है; परंतु वह है असलमें उन भगवान्‌की लीला कि जिनके संकल्पसे अनन्त ब्रह्माण्ड बनते–बिगड़ते हैं । वहाँ ऐश्वर्य सर्वथा छिप जाता है, वहाँ तो बैठकर श्रीराधाके लिये रोते हैं । 'हाय रे, भगवान्‌की स्मृति नहीं छूटे'–इस प्रकार जिनकी स्मृतिके लिये इतनी व्याकुलता ऋषि–मुनियोंको होती है, वे ही प्रभु निरन्तर श्रीराधाजीके लिये व्याकुल होते, रोते रहते हैं ।

जैसे भी हो, पूर्ण चेष्टा करके मनुष्य इस संसारको भूलकर श्रीकृष्णकी चिन्मयी लीलामें मनको तन्मय कर दे, तभी वास्तवमें जीवनकी कृतकृत्यता है और यह तभी होगा, जब ठीक–ठीक पूरी लगनके साथ इसमें जुड़कर साधनामय जीवन बना लिया जाय ।

व्रज–प्रेममें मधुरभावकी सेवाका अधिकार पानेके लिये दो तरहकी साधना

करनी पड़ती है । एकको बाह्य साधना कहते हैं, दूसरीको आन्तरिक साधना। बाह्य साधनाका रूप यह है कि इस शरीरके द्वारा जो पाञ्चभौतिक है, निरन्तर जप, कीर्तन, श्रवण, पूजन आदिमें मनुष्य लगा रहे, सांसारिक झंझटोंमें कम–से–कम समय लगाये । आन्तरिक साधनाका यह रूप है कि मनसे दिव्य चिन्मय शरीरकी भावना करके उस शरीरके द्वारा निरन्तर चौबीसों घंटे सेवामें जुटा रहे । यही करते–करते जब प्रेम प्रकट हो जाता है, तब भगवान् भावनाको ही असली बनाकर दिखा देते हैं । दूसरे शब्दोंमें, तब भगवान्‌की वास्तविक चिन्मयी लीला प्रकट हो जाती है तथा जब पाञ्चभौतिक शरीर छूट जाता है, तब फिर प्रेमके और भी ऊँचे–ऊँचे स्तरोंका विकास होता है और अधिकारके अनुसार साधक जब प्रेमकी ऊँची–से–ऊँची अवस्थामें पहुँचता है, तब उसे सेवाका अधिकार मिलता है । यही वैष्णव आचार्योंका, शास्त्रोंका एवं प्रेमी संतोंका सिद्धान्त एवं अनुभव है ।

यहाँ जिस दिव्य शरीरकी भावना की जाती है, वही दिव्य शरीर सच्चिदानन्दमय वृन्दावनधाममें योगमायाके द्वारा पहुँचा दिया जाता है । वह शरीर किसी गोपीके गर्भसे जन्म धारण करता है तथा फिर थोड़ी–सी उम्र होते ही श्रीकृष्णके दर्शन होकर प्रेमकी ऊँची–ऊँची अवस्थाएँ–प्रेमके बाद स्नेह, स्नेहके बाद मान, मानके बाद प्रणय, प्रणयके बाद राग, रागके बाद अनुराग, अनुरागके बाद भाव और भावके बाद महाभाव इन अवस्थाओंमें पहुँचते ही श्रीकृष्णकी वंशी बजती है । वहाँ श्रीकृष्णकी रासलीलामें पहले–पहल उसे सेवाका अधिकार मिलता है । उसके बाद सदाके लिये वह साधक नित्य लीलामें सम्मिलित हो जाता है । यह एक क्रम है – जो गोपीभावसे साधना करते हैं, उनके लीलामें सम्मिलित होनेका क्रम है ।

जो सखाभावसे सेवाकी भावना करते हैं, उनका क्रम भी मिलता–जुलता ही होता है, पर सखागण रासलीलामें अधिकार नहीं पाते, उन लोगोंकी अन्तिम स्थिति वनमें गाय चराने, साथ खाने, मौज उड़ाने, कंधे चढ़नेतक ही है । इनका क्रम भी ऐसा होता है कि बाहर एवं अन्तर साधना करते–करते जब प्रेम प्रकट होता है, तब वे भगवान्‌के सखा बनकर यही लीला शुरू कर देते हैं, फिर उनका पाञ्चभौतिक शरीर छूटनेपर व्रजके किसी गोपके घर वे बालकके रूपमें जन्म लेते हैं । इसी प्रकार प्रत्येक भावकी साधनाका यह क्रम है, पर इतना ही हो, ऐसी बात नहीं है, यह तो एक नियम है । श्रीकृष्णके चाहनेपर तो वे जो चाहें, वही नियम बन सकता है, पर प्रायः इसी तरहसे साधकलोग साधनामें अग्रसर होते हैं।

आपपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है कि आपके मनमें व्रजप्रेमकी बात सुननेकी इच्छा होती है । आप निकुंज–लीला सुनना चाहते हैं और मैं सुनाऊँ–इससे बढ़कर मेरा एवं आपका सौभाग्य और क्या हो सकता है ? पर मैं जो सुनाने जा

रहा हूँ, वह सबके सुननेकी वस्तु सर्वथा नहीं है । मेरी तो यह धारणा है तथा अनुभवी संतोंसे भी बार–बार यह सुन चुका हूँ कि जिसके मनमें तनिक भी कामविकार है, उसे इसे कहने–सुननेका अधिकार ही नहीं है। अतः कम–से–कम इस लीलाके सम्बन्धमें सावधानी रक्खेंगे । मैं सच्चे हृदयसे कहता हूँ कि जिसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य श्रीराधाकृष्ण नहीं हो गये हैं । जिसके मनमें कभी भी श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाकी मधुमयी लीलाओंको सुनकर किसी प्रकार भी तनिक भी,, कोई–सा भी संदेह होता हो, जो प्रिया–प्रियतमके प्रेमके लिये अपना सर्वस्व स्वाहा करनेके लिये तैयार न हो, जिसका श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाकी अपार, असीम, अनन्त भगवत्तापर, उनकी अपार असीम कृपापर दृढ़, अटूट, अडिग, अचल, अटल विश्वास नहीं हो गया हो, उसे ये बातें जो मैं मधुर लीलाके सम्बन्धमें आगे लिख रहा हूँ, कभी नहीं पढ़नी चाहिये ।

ऊँचे स्तरकी एक लीला होती है और वह नित्य चलती रहती है । वह है परकीया भावकी लीला। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी ही विलक्षण प्रेमलीला होती है तथा श्रीराधारानीका प्रेम कितना ऊँचा है, यह दिखलाया जाता है । इस परकीया भावकी लीलामें होता क्या है कि भगवान् सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण अनन्त रूपोंमें प्रकट होकर सभी गोपियोंके एक–एक पति बनते हैं तथा राधारानीके भी एक पति श्रीकृष्ण ही अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं । फिर वहाँकी प्रत्येक लीलाके द्वारा सिद्ध किया जाता है कि पवित्र प्रेम क्या वस्तु है, प्रेममें कितना त्याग होता है । सबसे कठिन जो आर्य–पथ कुल धर्म है, उसका त्याग भी श्रीराधा एवं श्रीगोपीजन सहज ही कर देती हैं। यही प्रेमकी पराकाष्ठाकी लीला है तथा प्रेमप्राप्त कतिपय वैष्णव आचार्योंने एक–से–एक बढकर लीलाएँ लिखी हैं और अनुभव करके लिखी हैं । अवश्य ही यह इतनी ऊँची प्रेममयी लीला है कि सबके कहने–सुननेकी चीज बिल्कुल नहीं है । यह इतनी ऊँची बात है तथा इसमें इतने रहस्य भरे पड़े हैं कि असलमें तो श्रीकृष्णकी कृपासे ही कोई बिरला प्रेमी साधक इसे थोड़ा–बहुत समझ सकता है ।

व्रजप्रेममें केवल त्याग ही त्याग है । उसमें रत्तीभर भी कहीं अपने सुखकी वासना नहीं है । यद्यपि स्वयं श्रीकृष्ण ही राधारानी बने हुए हैं तथा श्रीराधारानी ही अनन्त असंख्य गोपियाँ बनती हैं । वहाँ श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं श्रीगोपीजनोंमें तिलभर भी कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वहाँ सब कुछ सर्वथा सच्चिदानन्दमय है, श्रीकृष्ण ही उतने रूपोंमें प्रकट रहते हैं, फिर भी लीलाकी सिद्धिके लिये सब गोपीजनोंका अपना–अपना एक भाव रहता है । श्रीकृष्णको सभी अपना प्राणवल्लभ मानती हैं, परंतु किसी भी गोपीके हृदयमें अपने सुखकी किंचिन्मात्र भी इच्छा नहीं

रहती, सभीकी चेष्टा इसीलिये होती है कि कैसे हमारे प्रियतम प्राणवल्लभको सुख हो। तथापि सबकी सेवा करनेका अलग–अलग ढंग होता है और सबका ढंग मिलकर इतनी सुन्दर विलक्षण लीला बन जाती है कि उसकी कोई उपमा नहीं, कोई दृष्टान्त नहीं कि उसे समझा जाय।

प्रेमका वर्णन करते हुए वैष्णव आचार्य जो कहते हैं, वह संक्षेपमें इस प्रकार कहा जा सकता है––

(१) जहाँ अपनी इन्द्रियोंके सुखकी वासना होती है, वहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ काम है ।

(२) जहाँ एकमात्र श्रीकृष्णको ही सुख मिले, यह आन्तरिक इच्छा है, उसका नाम प्रेम है ।

(३) काम और प्रेमको इसी कसौटीपर कसना चाहिये कि काममें प्रत्येक चेष्टा होगी इस उद्देश्यसे कि हमें सुख मिले, अधिक–से–अधिक हमें आनन्द मिले; और प्रेममें प्रत्येक चेष्टा इस उद्देश्यको लेकर होगी कि श्रीकृष्णको सुख हो, चाहे हमें सदा ही दुःख क्यों न मिले ।

(४) उदाहरणके लिये एकमात्र श्रीगोपीजन ही हैं जिनमें अपने सुखकी कोई वासना ही नहीं है और उनका समस्त व्यवहार ही श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेवाला होता है ।

(५) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके लिये लोकधर्मका परित्याग कर देती हैं ।

(६) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये वेदधर्मका परित्याग कर देती हैं।

(७) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये अपनी देहके सुखका त्याग कर देती हैं ।

(८) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये समस्त संसारके व्यवहारको भी आवश्यकता पड़ते ही छोड़ देती हैं।

(९) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये लज्जाका सर्वथा परित्याग कर देती हैं ।

(१०) श्रीगोपियोंमें श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेकी इतनी प्रबल उत्कण्ठा रहती है कि वे अपना धैर्य भी छोड़ देती हैं ।

(११) श्रीगोपियाँ अपने–आपतकको भी भूलकर केवल श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं ।

इस प्रकार उनके जीवनमें एकमात्र श्रीकृष्णका सुख ही उद्देश्य होता है। यहाँतक कि वे अपने कुलधर्मका भी त्याग कर देती हैं; इसलिये कि हमारे प्रियतमको सुख पहुँचे । उनका श्रीकृष्णके पास जाना इसलिये नहीं होता कि वहाँ

जानेसे हमें सुख मिलेगा, बल्कि इसलिये कि श्रीकृष्णको हमारे जानेसे सुख मिलेगा।

इस गोपीप्रेमके राज्यमें सब कुछ सच्चिदानन्दमय होते हुए भी श्रीगोपियोंके कई भेद हैं । मुख्य चार भेद हैं ––

(१) नित्य–गोपियाँ अर्थात् श्रीराधारानी, उनकी सखियाँ, दासियाँ एवं सहचरियाँ; श्रीचन्द्रावली एवं उनकी दासियाँ, सखियाँ, सहचरियाँ आदि । ये अनादिकालसे हैं । इनमें कोई हेर–फेर अब हुआ हो या होगा–यह बात बिल्कुल नहीं है । जैसे श्रीकृष्ण अनादिकालसे हैं, वैसे श्रीराधा एवं नित्य–सखियाँ भी अनादिकालसे हैं और अनन्त कालतक रहेंगी । इनके अतिरिक्त जो भी गोपियाँ हैं, वे सब–की–सब साधनासे वहाँ पहुँची हुई हैं । कोई कभी, कोई कभी, इसी प्रकार साधनासे सम्मिलित हुई हैं । उनमें––

(२) कुछ तो श्रुतियाँ हैं, जो साधना करके गोपी–देह पाकर लीलामें सम्मिलित हुई हैं ।

(३) कुछ देवताओंकी स्त्रियाँ हैं, जो समय–समयपर साधनाके द्वारा गोपी–देह पाकर लीलामें सम्मिलित हुई हैं ।

(४) कुछ ऋषि हैं, जो समय–समयपर साधनाके द्वारा गोपीदेह पाकर सम्मिलित हुए हैं । अब आगे भी जो मनुष्य, जो साधक साधना करेगा और साधनामें सफल होगा, वह भी गोपीदेह पाकर उस लीलामें सम्मिलित होगा।

अब तीन प्रकारकी तो हैं साधनाके द्वारा बनी हुई गोपियाँ । इन्हीं नित्य गोपियोंके साथकी अत्यन्त विलक्षण लीला नित्य चलती रहती है और उसीके किसी एक अंशमें, जो साधना करते हैं, वे प्रवेश करते हैं । जितने ऊँचे अधिकारी होते हैं, उतनी ही ऊँचे अंशकी लीलामें प्रवेश करते हैं, ऊँचे स्तरोंकी लीलाओंको देखकर कृतार्थ होते हैं तथा उसमें स्वयं भी सेवाके अधिकार पाकर जीवन सफल करते हैं। अब जो नित्य सखियाँ हैं, दासियाँ हैं तथा स्वयं श्रीराधारानी एवं श्रीचन्द्रावलीजी हैं, इन सबका अलग–अलग भाव होता है अर्थात् एक–से–एक बढ़कर श्रीकृष्णका प्रेम इनमें होता है । सबसे ऊँचा एवं सर्वोत्तम जो प्रेमका रूप है, उसका विकास एकमात्र श्रीराधामें ही हुआ है।

इस प्रेम–लीलामें स्वकीया एवं परकीया–ये दो भाव होते हैं स्वकीया सर्वथा निकुंजकी लीला है, महावाणीमें इसीका संक्षिप्त वर्णन है । परकीयामें गोष्ठ एवं निकुञ्जकी दोनों लीलाएँ सम्मिलित रहती हैं । अस्तु, इस गोष्ठ–निकुञ्जकी सम्मिलित लीलामें जितनी गोपियाँ हैं, सब परकीयाभावकी हैं। उस दिन मैंने आपसे कहा था कि स्वयं श्रीकृष्ण ही अपनी एक–एक छायाका निर्माण करके उन

गोपियोंके एवं स्वयं श्रीराधारानीके भी स्वामी बनते हैं तथा फिर वहाँ अति पावनी, अति उच्च स्तरके त्यागकी लीला होती है । श्रीगोपीजन सभी कुछका त्याग श्रीकृष्णके लिये कर देती हैं । यही प्रेमकी पराकाष्ठा है कि प्रियतम श्यामसुन्दरके सुखके लिये सब कुछका त्याग बिना हिचकके हो जाय ।

अब एक बात याद रखिये–जैसे मूलमें एक श्रीकृष्ण हैं, वैसे मूलमें केवल एक राधारानी ही हैं । पर राधारानी ही स्वयं श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ललिता, विशाखा, चित्रा एवं अनन्त सखियों–दासियों तथा चन्द्रावलीजीका रूप धारण कर लेती हैं । इसको कायव्यूह–निर्माण कहते हैं । अर्थात् श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये, तरह–तरहकी लीला रच–रचकर सुख पहुँचानेके लिये राधारानी कायव्यूहकी रचना करके अपनेको अनन्त नित्य गोपियोंके रूपमें अनादिकालसे प्रकट किये हुए हैं । इन नित्य गोपियोंके यों तो अनन्त विभाग हैं, पर मुख्य विभाग श्रीराधा एवं चन्द्रावलीजीका है । श्रीराधा ही चन्द्रावलीजी हैं, पर इन दोनोंके दल अलग–अलग होते हैं। उस दिन जो खण्डिताके पद पढ़े थे, वह इन्हीं दो दलोंको लेकर होनेवाली लीलाका वर्णन था । श्रीकृष्ण जब राधारानीके पास आते हैं, तब चन्द्रावलीजी रूठकर मान करती हैं और जब चन्द्रावलीजीके पास श्रीकृष्ण चले जाते हैं, तब श्रीराधाजी रूठकर मान करती हैं। यही संक्षेपमें मानलीलाका सूत्र है । इसके अत्यन्त सुन्दर–सुन्दर रूप हैं एवं अत्यंत विलक्षण–विलक्षण लीलाएँ होती हैं; सबका वर्णन कोई भी कर ही नहीं सकता; क्योंकि ये अनिर्वचनीय और अनन्त हैं ।

पर असलमें बात क्या है, यह भी समझ लेना चाहिये । श्रीकृष्णको अधिक–से–अधिक सुख मिले, इसलिये श्रीराधाजी एवं श्रीचन्द्रावलीजी मान करती हैं; तथा मान करनेमें भी कितना ऊँचा–ऊँचा भाव होता है यह आपको श्रीराधाजीके प्रेमप्रलापकी कुछ बातें लिखकर कभी समझानेकी चेष्टा कर सकता हूँ । बीचमें यह लिखना भूल गया कि श्रीराधाकी सखियाँ ललिता आदि एवं श्रीचन्द्रावलीकी सखियाँ शैव्या आदि दोनों इस चेष्टामें रहती हैं कि कैसे श्रीकृष्णको अपनी–अपनी सखीके कुंजमें ले जायँ । श्रीचन्द्रावलीकी सखी राधारानीकी सखियोंकी दिव्य प्रेममयी वञ्चना करती रहती हैं और राधारानीकी सखियाँ चन्द्रावलीकी सखियोंकी वंचना करके श्रीकृष्णको ले जाती हैं । श्रीकृष्णको दोनोंको ही प्रसन्न करना पड़ता है । उसके सामने उसकी सुननी पड़ती है, उसके सामने उसकी ।

यों तो यह लीला अनिर्वचनीय है और उसके किसी भी अंशको पूरा–पूरा समझना असम्भव है । पर पढ़–सुनकर जीवन पवित्र करके श्रीकृष्णकी कृपासे उनका दर्शन करनेके लिये ही साधना करनी पड़ती है तथा जिन संतोंको जो

अनुभव हुआ है तथा ऋषि–महर्षि जो इस प्रकारकी लीलाएँ शास्त्रमें लिख गये हैं, उन्हींको आधार बनाकर मेरी तुच्छ बुद्धिमें जो कुछ आया है, लिख गया हूँ और भविष्यमें भी भगवत्कृपावश जो भी प्रेरणा होगी, लिख सकता हूँ ।

बस आपकी ओरसे निरन्तर भगवन्नाम–जपकी रट लगी रहे और मन श्रीकृष्णकी किसी भी लीलाको आधार बनाकर उसमें डूबा रहे और क्या कहूँ। सभी सत्संगी इष्ट मित्रोंको भी भजनमें लगनेकी प्रेरणा करें।

राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–३०

व्रजलीला अनन्तानन्त है

रतनगढ

तिथि उल्लेख नहीं

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला,

सादर सप्रेम जय श्रीराधे ।

आपका पत्र मिला । ब्रजलीलाके सम्बन्धमें आपकी अतिशय जिज्ञासा देखकर मुझे हर्ष होता है, परन्तु आपकी धन पर अतिशय महत्वबुद्धि, दूसरे अतिशय बढ़े अहंकारको देखकर यही अनुभव होता है कि भूमि अतिशय बंजर है। इसमें तो ज्ञानके अंकुर भी तत्क्षण उगने असंभव हैं, सो प्रेमांकुर तो सर्वथा ही पनप नहीं सकते । परन्तु प्रभु–कृपा पर आशा लगाकर आपकी इच्छा एवं आपका मान रखता हुआ जो कुछ प्रभु प्रेरणा दे रहे हैं, लिख रहा हूँ ।

यह व्रज लीला जितनी एवं जैसी मैं लिख रहा हूँ, उतनी एवं वैसी नहीं वरं अनन्तानन्त है । नित्य नव नवायमान रसमयी एवं नित्य नूतन है ।

जो भक्त जितना ऊँचा अधिकारी होता है, उसे उतने ऊँचे दर्जेकी लीलाका दर्शन होता है । उसी लीलामेंसे एक प्रकारकी लीलाका उदाहरण देकर आपको समझाता हूँ । श्रीकृष्णकी एक लीला है, जिसे दैनन्दिनी लीला कहते हैं, अर्थात् वह प्रतिदिन प्रातःसे लेकर राततक चौबीस घंटे एक–एक प्रकारकी होती है । इसीको अष्टकालीन लीला भी कहते हैं । स्वकीयाभावकी अष्टकालीन लीला दूसरी है । यहाँ परकीयाभावकी अष्टकालीन लीला बता रहा हूँ । इस लीलाका बहुत संक्षेपमें यह रूप है–श्रीकृष्णकी उम्र चौदह वर्ष कई महीने रहती है । श्रीराधारानी उनसे कुछ छोटी रहती हैं । यही उम्र इनकी अनादिकालसे है और अनन्तकालतक रहेगी । इसी रूपको 'नित्य–किशोर एवं नित्य–किशोरी'का रूप कहते हैं तथा इतने ही रूपमें सदा रहकर यह लीला अनादिकालसे चलती आ रही है और अनन्तकालतक चलती रहेगी । पर विलक्षणता यह है कि यद्यपि आधार तो एक रहेगा, पर यह नित्य नयी–नयी होती रहती है और नयी–नयी ही होती रहेगी, क्योंकि असलमें यह जड़–जगत्की लीला नहीं है, यह है स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी

व्रजलीला अनन्तानन्त है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

स्वरूपभूत लीला । अतएव इसमें नित्यनूतनता रहेगी ही ।

सूत्ररूपसे ही संक्षेपमें लिख दे रहा हूँ, विस्तार तो सारा जीवन लिखा जाय तो भी समाप्त होनेका नहीं है । यह लीला ऐसे प्रारम्भ होती है–प्रातःकाल निकुञ्जमें श्रीप्रियाप्रियतम सोये रहते हैं; वृन्दादेवीके संकेतसे शुक–सारिका आदि पक्षी उन्हें जगाते हैं । जगानेके बाद सखियाँ दोनोंकी तरह–तरहसे सेवा करती हैं । सेवा होने के बाद श्रीकृष्ण अपने घर चले जाते हैं तथा रातके समय मैया यशोदा जहाँ उन्हें सुला गयी थीं, वहीं जाकर चुपचाप सो जाते है । राधारानी भी घर आकर सो जाती हैं । फिर वहाँ श्रीकृष्णको मैया उठाती हैं । वे हाथ–मुँह धोकर दतुवन करते हैं और गोशालामें जा कर गाय दुहते हैं । फिर स्नान करते हैं । इधर सखियाँ राधारानीको उठाती हैं ! मुँह धुलाकर दतुवन आदि कराकर उबटन लगाती हैं, फिर स्नान कराती हैं, फिर श्रृंगार करती हैं । इसी समय मैया यशोदाकी एक सखी राधारानीको बुलाने आ जाती है कि 'चलो, मैया तुम्हें रसोई बनानेके लिये बुला रही हैं ।' उनकी साससे कहकर वह उन्हें ले जाती है, वहाँ राधारानी रसोई ानाती हैं । उनके बनाये हुए भोजनको श्यामसुन्दर आरोगते हैं। राधारानीके द्वारा मैया रसोई इसीलिये बनवाती हैं कि इनके हाथकी रसोईको श्यामसुन्दर बड़े प्रेमसे खाते हैं तथा राधारानीको यह वर मिला हुआ है कि जो इसके हाथकी रसोई खायेगा, उसकी आयु बढ़ेगी । यशोदा सोचती हैं कि मेरा लल्ला बहुत दिन जीयेगा, इसिलिर नित्य इन्हें प्रार्थना करके बुलवाती हैं । इसके बाद मैया स्वयं बहुत तरहसे क ड़कर राधारानीको भोजन कराती हैं । फिर श्यामसुन्दर गाय चरानेके लिये व नमें जाते हैं तथा राधारानी एवं सखियाँ वनमें फूल चुननेके बहाने तथा सूर्य–पूजाके बहानेसे वनमें चली जाती हैं । वहाँ वृन्दादेवीका सारा प्रबन्ध ठीक रहता है । श्रीकृष्ण भी संकेतपर पहुँच जाते हैं । वहाँ मिलन होता है एवं ढ़ाई पहरतक तरह–तरहकी लीला होती हैं । इसके बाद श्यामसुन्दर वनमें अपने सखाओंके पास चले जाते हैं और राधारानी घर लौट आती हैं । वे फिर श्यामसुन्दरके लिये रसोई बनाती हैं, स्नान करती हैं तथा श्रृंगार करके अपने महलकी अटारीपर चढ़कर श्यामसुन्दरके वनसे लौटनेकी बाट देखती हैं । सायंकाल होनेपर श्यामसुन्दर लौटते हैं, सखियोंकी भीड़ लग जाती है । मैया श्यामसुन्दरको गोदमें लेकर उनका मुँह चूमती हैं, शरीर पोंछकर स्नान कराती हैं, सखाओंके साथ उन्हें कुछ जलपान कराती हैं । श्यामसुन्दर गाय दुहने चले जाते हैं, गाय दुहकर लौटते हैं तथा नन्दबाबा आदि बड़े–बड़े गोपोंके साथ बैठकर भोजन करते हैं । भोजन करनेपर नन्दबाबाका दरबार लगता है, उसमें खूब नाच–गान होता है । नन्दबाबाके दोनों बगलमें बैठकर श्रीकृष्ण एवं दाऊजी

व्रजलीला अनन्तानन्त है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

तमाशा देखते हैं । फिर मैया श्यामसुन्दरको बुला लेती हैं तथा दूध पिलाकर एक कमरेमें सुला देती हैं । जब मैया चली जाती हैं तब श्यामसुन्दर चुपकेसे निकलते हैं और जहाँपर संकेत बँधा होता है, वहाँ जा पहुँचते हैं । इधर राधारानीके पास मैया यशोदा बहुत–सी भोजन–सामग्री भेजती हैं । सखियाँ चालाकीसे श्यामसुन्दरका अधरामृतसिक्त प्रसाद भी ले जाती हैं । राधारानी एवं सखियाँ भोजन करती हैं, फिर श्रृंगार करके वृन्दादेवीकी दासीके पीछे–पीछे छिपी हुई वहाँ पहुँचती हैं । श्रीश्यामसुन्दर एवं राधारानीका मिलन होता है । वहाँ ढाई पहर राततक तरह–तरहकी लीलाएँ, वनविहार, जलविहार एवं भोजन आदि करके किसी कुञ्जमें प्रिया–प्रियतम विश्राम करते हैं । दूसरे दिन प्रातः उठनेकी लीला पहले लिखी ही गयी है । इस प्रकार प्रतिदिन अनादिकालसे यह लीला चल रही है और अनन्तकालतक चलती रहेगी । जिन भक्तोंको इस लीलाके दर्शन हुए हैं, उन्होंने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है तथा बहुतोंने साधनाके लिये भी इस लीलाका विस्तार किया है । ग्रन्थ भरे पड़े हैं। अगणित साधक अबतक हो चुके हैं और न जाने किन–किनको दर्शन भी हो चुके हैं । जो वाणीमें आ सका है, उसका भी बड़े संकोच और संक्षेपसे उन्होंने वर्णन किया है । वास्तवमें तो यह सर्वथा अनिर्वचनीय लीला है । मन–बुद्धिकी सामर्थ्य नहीं कि इसे समझ सके । भगवान्‌की असीम कृपा प्राप्त करके लाखों–करोड़ों भक्तोंमें कोई बिरले भक्त इस लीलाका अनुभव कर पाते हैं । बड़े–बड़े ऋषि–महर्षि न जाने कितनी तपस्या करते हैं; तब कहीं जाकर इसमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है । अवश्य ही जो सर्वथा सम्पूर्ण रूपसे अपने–आपको श्रीप्रिया–प्रियतमके चरणोंमें न्योछावर कर देता है, उन्हींकी कृपापर ही एकमात्र निर्भर हो जाता है, उसके लिये उनकी कृपासे ही इसका दर्शन सुलभ हो जाता है ।

प्रतिदिन नयी–नयी लीला होती रहती है और जब साधकका मन फँस जाता है, तब तो एक लीला ही प्रतिदिन नयी हो जाती है, उसका मन हटना ही नहीं चाहता । यह तो ध्यान होनेपरकी अवस्था है । मैं तो बहुत साधारण व्यक्ति हूँ–न मेरा मन स्थिर हुआ है, न ध्यान ही लगा है, न दर्शन हुए हैं । श्रीकृष्णकी कृपासे ये बातें सुनने–पढ़नेको मिल गयीं, यही मैं अपने लिये अत्यन्त सौभाग्यकी बात समझता हूँ तथा जीवनको पवित्र करनेके लिये एवं आप प्रेमसे सुनते हैं, इसलिये सुनाता हूँ ।

अनादिकालसे जो लीलाएँ हुई हैं और अनन्त कालतक जो लीलाएँ होंगी, वे सब–की–सब भगवान्‌के शरीरमें वर्तमानकी तरह फिल्मकी भाँति सजी रक्खी हैं। अब यही फिल्म घूमेगी और भक्तकी जो इच्छा होगी, जो लीला वह देखना चाहेगा,

व्रजलीला अनन्तानन्त है

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

भगवान्‌की इच्छासे उसी लीलावाला हिस्सा घूमकर उसके सामने आ जायगा । जब उद्धव पहले मिले, तब उनका अधिकार कुछ कम था। इसलिये पहले वियोगकी लीला उन्हें दिखायी पड़ी। फिर श्रीगोपीजनोंका दर्शन होनेके बाद उससे भी परे एक अत्यन्त विचित्र लीला है, जिसमें यद्यपि संयोग–वियोग दोनों होते हैं, फिर भी जो अत्यन्त विलक्षण है, उसीमें की पहली, संयोगकी लीला उन्हें देखनेको मिली और उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण तो यहीं हैं, यहाँसे कहीं गये ही नहीं । इससे और भी परेकी लीला थी; किंतु सबको उद्धवने थोड़े ही देखा था !

जब श्रीगोपीजनोंकी कृपासे वह अधिकार प्राप्त हुआ; श्रीकृष्ण एवं गोपीजनोंके प्रेमका प्रभाव कुछ–कुछ विदित हुआ एवं श्रीकृष्णकी कुछ अत्यन्त परेकी लीलाओंके दर्शन उन्हें होते हैं, तब उद्धवकी आँखें खुलती हैं और वे यह प्रार्थना करते हैं कि 'हे विधाता ! व्रजमें मनुष्यका शरीर मिलना तो दुर्लभ है; यदि मुझे तुम एक झाड़ी, लता, घासका तिनका ही बना दो तो फिर तो मेरा काम बन जाय । श्रीगोपीजनोंके चरणोंकी धूलि मुझपर उड़–उड़कर पड़े और मैं कृतार्थ हो जाऊँ, बस, इतनी दया कर दो––

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।।

x x x x

कैसे होउँ द्रुम लता बेलि कुंजन बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परै मो पै परछाहीं ।।
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौं उपाय ।
मोहन होहिं प्रसन्न जो, तौ बर माँगउँ जाय।।
कृपा करि देहिं जो ।

"हाय ! मैं कैसे इस व्रजमें लता बन जाऊँ ? अरे, कम–से–कम मुझपर श्रीगोपियोंकी परछाहीं तो इस प्रकार पड़ जायगी; बस, इतना ही मेरे लिये बहुत है । पर हे भगवन् ! मैं क्या करूँ, यह तो मेरे वशकी बात नहीं है । मेरा अधिकार होता तो अभी यहीं लता बनकर मैं सदाके लिये रह जाता । हाँ, यदि मोहन, प्यारे श्यामसुन्दर प्रसन्न हो जायँ तो मेरा काम बन जाय । मैं उनसे जाते ही यही वर माँगूँगा कि 'हे गोपीनाथ ! मैं तुमसे कुछ भी नहीं चाहता; केवल इतनी कृपा कर दो कि मैं व्रजमें एक लता बन जाऊँ ।' पर मेरा भाग्य, पता नहीं, ऐसा होगा या नहीं । पता नहीं श्यामसुन्दर मुझे यह वर देंगे कि नहीं ।" यह दशा हुई

थी तब, जब श्रीगोपीजनोंके दर्शन उद्धवको हुए । इतना होनेपर भी उद्धवको लीलामें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं प्राप्त हुआ; केवल दर्शन–दर्शन हुए, सो भी थोड़े–से अंशके ही ।

यह बड़ी विलक्षण बात है कि ये व्रजलीलाएँ एक–से–एक बढ़कर हैं । इनके विषयमें यह कहा ही नहीं जा सकता कि अमुक सबसे परेकी लीला है; क्योंकि सबसे परेकी लीला तो कोई तब कही जाय जब कि कोई सीमा हो । जब लीला अनन्त है, भगवान्‌की सर्वथा स्वरूपभूता है, तब वह नयी–ही–नयी होती जायगी,एक–से–एक विलक्षण आती जायगी; जितना ऊँचा अधिकारी होगा, उसके सामने उतने ही ऊँचे स्तरकी लीला आयेगी । शास्त्रमें आजतक जिन–जिन लीलाओंका वर्णन हुआ है, वह तो बहुत ही थोड़ा है । बहुत–सी ऐसी लीलाएँ हैं कि जिनका वर्णन होना ही असम्भव है । तथा ऐसी भी बहुत सी लीलाएँ हैं, जिन्हें आजतक किसीने नहीं देखा है । वैसा कोई ऊँचा भक्त हो जाय तो वह बिल्कुल नयी और सबसे ऊँचे स्तरकी लीला भी देख सकता है । हाँ, एक बात अवश्य है कि जिसको जिस लीलाका दर्शन होता है, उसको यह प्रतीति नहीं होती कि 'हमें अब कुछ देखना बाकी रह गया है ।' जैसे समुद्रमें डूब जानेपर ऊपर–नीचे, बाहर–भीतर जल–ही–जल दीखता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दमय लीला–सिन्धुमें डूब जानेपर वह स्वयं लीलामें तन्मय हो जाता है, अब उसे यह ज्ञान थोड़े रहता है कि अभी कुछ बाकी है । पर जैसे समुद्रमें विचित्र–विचित्र इतनी बड़ी तरंगें आती हैं कि वैसी हजारों वर्षके इतिहासमें नहीं मिलती । वैसे ही लीलासिन्धुमें भी ऐसी–ऐसी तरंगें आती हैं कि उनके प्रकट होनेपर पहली फीकी हो जाती हैं; फिर दूसरी लीलाओंके प्रकट होनेपर पहली फीकी हो जाती है; तीसरी लीलाओंके प्रकट होनेपर दूसरी फीकी पड़ जाती हैं, और चौथी प्रकट हुई कि तीसरी फीकी पड़ जाती हैं । तरंगोंकी कोई सीमा नहीं कि कब कैसी तरंग आकर पहलेवालीको फीकी–छोटी बना दे। वैसे ही भगवान्‌की लीलाका कोई हिसाब नहीं । न जाने कब कोई ऐसी विलक्षण लीला भगवान् प्रकट करेंगे कि पहलेवाली सब–की–सब फीकी हो जायँगी । पर फीकीका यह अर्थ नहीं कि पिछली लीलासे मन उपरत हो जाय। भगवान्‌की प्रत्येक लीला ही अनन्त असीम सौन्दर्यसे भरी है । यहाँ तो तुलनात्मक दृष्टिसे यह बात कही गयी है ।

इसीलिये साधना इसी बातकी करनी पड़ती है कि चाहे जैसे हो, एक बार लीला–समुद्रमें जाकर डूब तो जायँ । फिर तो तरंगें आयेंगी ही । उद्धव भगवान्‌के सखा थे, उन्हें सख्यरसका आनन्द प्राप्त था । पर भगवान् तो कृपालु हैं । उन्होंने देखा–बिचारा केवल सूखा ज्ञानका आनन्द एवं मेरे सखापनका

व्रजलीला अनन्तानन्त है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

आनन्द ही पाता है; अब इसे व्रज भेजकर कुछ इससे भी परेका जो आनन्द है, वह दिखलाऊँ । उद्धव गये । पहले तो उन्होंने ज्ञानकी चर्चा की; पर इसके बाद जब गोपियोंकी कृपासे गोपियोंकी विरह–लीलाके दर्शन हुए, तब उनके होश उड़ गये– हाय ! मेरा जीवन तो व्यर्थ गया । उस पश्चात्तापका यह फल हुआ कि श्रीगोपियोंने और भी कृपा की तथा उन्हें उससे भी ऊँची एक लीलाका थोड़ा–सा अंश दिखलाया । इसके बाद और भी कृपा हुई होगी, हम लोगोंको उसका क्या पता ।

पर इतनी बात इसीलिये हुई थी कि उद्धवको श्रीकृष्णका साक्षात् हो चुका था । फिर भगवान्ने कृपा करके ऊँचे–ऊँचे स्तरोंकी बात उन्हें दिखायी, सुनायी। इसी प्रकार जैसे भी हो, एक बार श्रीकृष्णका साक्षात्कार मनुष्यको कर लेना चाहिये। फिर मुहर लग जाती है । जब एक बार श्रीकृष्णका साक्षात् हो जाता है, तब उसे 'पास' मिल जाता है कि अब यह हमारी लीला देख सकता है । वह जितना अधिक समय लगायेगा, उतनी ही अधिक लीला देख सकेगा। यहाँ समय लगानेका अर्थ है–लालसा बढ़ाना तथा श्रीकृष्णकी कृपापर अपने–आपको न्योछावर कर देना । वहाँ किसी राजाके सीमित महलमें देखनेकी वस्तुएँ थोड़े ही हैं । भगवान्की लीलावाले महलमें एक बार प्रवेश कर जानेके बाद फिर तो अनन्त कालतक देखने पर भी वहाँकी वस्तुएँ समाप्त नहीं हो सकतीं ।

मान लीजिये एक बहुत बड़ा सम्राट् है । अब वह जिस समय दरबारमें रहता है, उस समय उसका रोब सबपर छाया रहता है । पर जब वह महलमें जाता है, तब बच्चा उसकी दाढ़ी पकड़कर खींचता है और रानी उसकी सेवा करती है । रानी यह जानती अवश्य है कि मेरे पति बड़े भारी सम्राट् हैं, पर वहाँ रानीके मनमें उसके सम्राटपनका रोब नहीं रहता । वहाँ तो सम्राट् उसके प्रियतम पति हैं । सम्राट् हैं दरबारमें, महलमें तो उसके स्वामी हैं, उनपर उसका अधिकार है । राजदरबारका कानून, बैठना–उठना, बातचीत, हँसना–बोलना, सब मर्यादासे सीमित रहता है; वहाँ सम्राटपन (ऐश्वर्य) बात–बातमें रहेगा । पर महलमें सब नियम ही दूसरे होते हैं, वहाँ केवल घर–गृहस्थीका प्रेममय नियम होता है । भगवान्के बड़े–बड़े ऊँचे–ऊँचे भक्त कोई राजमन्त्रीकी तरह समस्त विश्वकी सँभाल रखते हैं, कोई बहुत बड़े अधिकारीकी तरह काम करते हैं, यहाँतक कि युवराजकी तरह, भगवान्के पुत्रकी तरह अधिकार रख सकते हैं, पर इतना अधिकार रखकर भी राजमहलकी निर्बाध प्रेममयी स्थितिका उनको कुछ भी पता नहीं हो सकता; वे राजरानी, पटरानीको देखतक नहीं सकते–जानतक नहीं सकते कि उनकी शकल–सूरत कैसी है ?

व्रजलीला अनन्तानन्त है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

भगवान्‌का द्वारकाका रूप, मथुराका रूप, अयोध्याका रूप–ये सब ऐश्वर्यके रूप हैं । बहुत ऊँचे–ऊँचे संत उनकी इस ऐश्वर्यलीलामें स्थान पाकर भगवान्‌की तरह–तरहकी सेवा करते हैं । पर वृन्दावनका जो रूप है, वह राजमहलका रूप है तथा जैसे राजमहलकी एक दासी भी राजमन्त्रीको ही नहीं, युवराजतकपर आज्ञा चला देती है, वैसे ही श्रीगोपीजनोंकी आज्ञा ब्रह्मा–विष्णु–महेशतकपर चलती है । अवश्य ही जिस प्रकार राजमहलमें दिन–रात आनन्दित रहनेवाली राजरानियोंको, दासियोंको यह अवकाश नहीं कि राज्यमें क्या हो रहा है यह देखें, वैसे ही मधुर लीलामें जिन्हें स्थान प्राप्त हो जाता है, उनको उस अनिर्वचनीय आनन्दसे छुट्टी ही नहीं मिलती कि जाकर देखें–बाहर राज्यमें क्या कैसे हो रहा है ।

जो रात–दिन श्रीकृष्णको रोबमें बैठे देखता है, उसे क्या पता कि ये ही श्रीकृष्ण महलमें जाकर न जाने क्या–क्या करते हैं । वह तो दिन–रात दरबारी कानूनकी मर्यादामें रहता है । मर्यादाकी जो लीला होती है, उसीमें उसका मन पगा हुआ होता है ।

जैसे साँझ हुई कि महलकी रानियाँ अटारीपर चढ़कर राज्यमें क्या हो रहा है –यह देखना चाहें तो देख सकती हैं, पर राज्यवाला कोई भी उनको देख नहीं सकता । वैसे ही जो मधुर लीलाके भक्त हैं, वे कभी इस प्रापंचिक जगत्‌की लीला तथा ऐश्वर्यमयी लीलाको देखना चाहें तो देख सकते हैं । पर जो दिन–रात मिश्रीके रसको चख रहा है, उसका गुड़पर मन थोड़े ही चलता है । वह तो ऐसे विलक्षण आनन्दमें छका रहता है कि क्या पूछना । उसको ऐश्वर्यकी बात सुनने–कहनेकी भी फुरसत नहीं होती ।

यद्यपि इसके लिये लोकमें कोई दृष्टान्त नहीं, फिर भी समझनेके लिये समझें कि जैसे राजाकी रानीकी स्पेशल गाड़ी कहीं जाय तो राज्यके मन्त्री आदि बड़े–बड़े अफसर सब प्रबन्ध करते हैं । सारा प्रबन्ध उन्हींका रहता है तथा उनके प्रबन्धमें ही स्पेशल जाती है । पर राजमन्त्री यह जानता है कि मेरा प्रबन्ध रहनेसे क्या हुआ, ये हैं तो राजमहलकी पटरानी । मेरा अधिकार तो ये इसलिये मानती हैं कि मेरा आदर बढ़े । पर वस्तुतः मैं तो इनका चाकर हूँ । ठीक उसी प्रकार यदि मधुर लीलामें स्थान पाया हुआ कोई भक्त या उसका अवतार हो तो उसकी देख–रेख ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं बड़े–बड़े देवता ही करते हैं, पर यह समझते हुए कि ये तो हमारे प्रभुके प्रेमी हैं ।

जो वैसे भक्त हैं या अवतार लिये हुए है, वे सब कानून मानते हैं; पर उनका यहाँका कानून मानना वैसे ही है, जैसे राजरानी सैर करने निकले और मन्त्रीके प्रबन्धमें उसे रहना पड़े । मन्त्रीने जहाँ जैसे रहनेकी, खानेकी व्यवस्था की है, उसी

व्यवस्थाका राजरानी पालन करती है । पर यह सब करते हुए भी जैसे वह अपनेको इनके शासनसे सर्वथा परे समझती है, वैसे ही जो कोई ऐसे बिरले भाग्यवान् संत होते हैं अथवा अवतार लिये होते हैं, वे यहाँ इस संसारके कानूनका ठीक–ठीक पालन तो करते हैं, पर वस्तुतः वे अपनेको इस राज्यके शासकोंकी शासनव्यवस्थासे परे अनुभव करते हैं ।

कल्पना कीजिये–सम्राट्को मजाक सूझे और उसकी इच्छासे कोई महलकी रानी वेष बदलकर राज्यमें घूमे । अब कोई राजाका चपरासी हो, उस बेचारेको तो पता है नहीं कि यह महलकी रानी है, वेष बदले हुए है । अब सम्राट्का रानीके लिये संकेत है कि 'तुमको वेष बदले हुए जब दरबारमें हम हों तो आना होगा । अब जब वह रानी जायेगी तब चपरासी तो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेगा, जो वह सबके साथ करता है । ठीक, उसी तरह पहले आदेश लायेगा, तब दरबारमें प्रवेश करने देगा । वहाँ दरबारमें केवल सम्राट्को ही पता है कि यह तो हमारी रानी है, वेष बदले हुए यहाँ आयी है; और लोग तो जानते भी नहीं कि यह कौन है ? रानी वहाँ दरबारमें खूब ठाटसे, ढ़ंगसे बात करती है; पर मन–ही–मन वह भी हँसती है तथा सम्राट् भी उसपर हुकुम तो चलाते हैं, पर मन–ही–मन खूब हँसते हैं । इसी प्रकार भगवान् भी कभी–कभी लीला किया करते हैं ।

एक बहुत सुन्दर लीला आती है––भगवान् द्वारकामें गद्दीपर बैठे हैं तथा कुछ ग्वालिनें दहीके मटके लिये दरबारमें आती हैं । भगवान् तो सब जानते हैं–पहले अदबसे बात होती है । फिर गोपियाँ कहती हैं कि 'चलो वृन्दावनमें, यहाँ गद्दीसे उतरो ।' सारा दरबार ठक् हो जाता है कि भला, ये गँवारी ग्वालिनें कितनी बढ़- बढ़कर बातें कर रही हैं । श्रीकृष्ण थोड़ा और भी रंग जमाते हैं । गोपियाँ कहती हैं कि 'हम राधारानीकी दासियाँ हैं; यदि सीधे मनसे नहीं चलोगे तो फिर दस्तावेज निकालना पड़ेगा !' (श्रीकृष्णने एक दस्तावेज लिख दिया था कि मैं आजीवन राधारानीका गुलाम रहूँगा ।) श्रीकृष्ण खूब हुज्जत करते हैं कि हमें याद नहीं कि हमने कहाँ क्या दस्तावेज लिखा है। फिर गोपियाँ दस्तावेज निकालकर श्रीकृष्णकी सही दिखलाती हैं और गद्दीसे उतार देती हैं । सारा दरबार चकित रह जाता है । श्रीकृष्ण पीछे–पीछे चल पड़ते हैं । अब सोचिये, वृन्दावनके महलकी दासी उनकी इच्छासे ही दरबारमें आती है तथा तरह–तरहकी लीला करती है, पर लीला देखकर यह अनुमान भी नहीं हो सकता कि ये ही राजराजेश्वर श्रीकृष्ण वृन्दावनकी गोपियोंके दास हैं । ये अप्रकट लीलाएँ प्रेमी भक्त संतोंके नेत्रगोचर होती हैं, ग्रन्थोंमें पूरी नहीं पायी जाती । और ये लीलाएँ कुछ इतनी ऊँची हैं कि मन जबतक बिल्कुल पवित्र नहीं हो जाता, तबतक इनके

रहस्यका अनुमान लगाना भी बड़ा ही कठिन होता है । किसी भी दृष्टान्तसे इनके वास्तविक रहस्यको समझा नहीं जा सकता ।

भगवान्‌की लीलाएँ अनन्त हैं । उनमें किसीमें भी मन लग जानेपर तो महीने–के–महीने बीत जाते हैं, एक ही ध्यान बँधा रह जाता है । पता ही नहीं लगता कि क्या हो रहा है । समाधि हो जाती है । परंतु जबतक ऐसी अवस्था नहीं हो जाती, तबतक चञ्चल मनको वशमें करनेके लिये दस–बारह लीलाएँ चुन लेनी चाहिये तथा खूब कड़ाईसे समय बाँध लेना चाहिये कि इतने समयसे लेकर इतने समयतक यह लीला, फिर यह लीला, फिर यह । इस प्रकार जागनेसे सोनेतक मन–ही–मन चिन्तनका तार चलता रहे । बाहर तो सुन रहे हैं, पोथी पढ़ रहे हैं, पर भीतरका काम भी चलते ही रहना चाहिये । खूब चेष्टा करनेसे भगवान्‌की कृपा होनेपर ऐसा बड़ी आसानीसे हो सकता है ।

वैष्णव–सिद्धान्तका तो यह एक निचोड़ है कि भक्त भगवान्‌से अपना एक सम्बन्ध जोड़ ले । भगवान् हमारे स्वामी हैं, मैं उनका दास हूँ । भगवान् हमारे सखा हैं, मैं उनका मित्र हूँ । भगवान् हमारे पुत्र हैं, मैं उनका पिता हूँ । भगवान् हमारे पति हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ । भगवान् हमारे प्रेमास्पद प्राणनाथ हैं, मैं उनकी प्रेयसी हूँ । कहनेका अभिप्राय यह है कि जो सम्बन्ध प्यारा लगे, मनको खींचे–बस, उसीको एक बार दृढ़ करके जोड़ लें और फिर ठीक उसी भावके अनुसार चौबीसों घंटे सेवामें लगा रहे । भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, जिस क्षण कोई उनसे सम्बन्ध जोड़ता है, ठीक उसी क्षण वे उसके उसी सम्बन्धको स्वीकार करके उसके लिये वही बनकर आनेके लिये तैयार हो जाते हैं । विलम्ब तो होता है हमारी उत्कण्ठाकी कमीके कारण । यही उत्कण्ठा, जैसे–जैसे भजन–स्मरण बढ़ता है, वैसे–वैसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर बढ़ने लगती है और जिस क्षण उत्कण्ठा पूरी हुई, ठीक उसी क्षण वही बनकर भगवान् उसके सामने प्रत्यक्ष आ जाते हैं और फिर उस दिनसे वह भगवत्प्राप्त पुरुषोंकी गणनामें आ जाता है ।

लीलाचिन्तन करते–करते बीचमें भगवान्‌की कृपासे कई विचित्र–विचित्र घटनाएँ हो जाती हैं । मान लें, आप ध्यान कर रहे हैं, भोजनकी लीला चल रही है । बड़े, पकौड़ी, साग एवं तरह–तरहकी मिठाइयाँ मन–ही–मन परस रहे हैं और भावना कर रहे हैं––श्रीकृष्णके भोजन कर लेनेके बाद अब मुझे प्रसाद मिला है, उसे मैं खा रहा हूँ । अब वहाँ मनमें खानेका चिन्तन हो रहा था, पर ठीक वही मिठाई यहाँ इस मुँहमें आ जायगी । इसका अर्थ यह हुआ कि आज ध्यान नहीं हुआ; आज थोड़ी देरके लिये प्रत्यक्ष दर्शन हुआ ।

कभी–कभी भक्तोंको ऐसा हुआ है कि भावनासे खीर बना रहे हैं । वह

गरम ज्यादा थी, चूल्हेसे उतारते समय हाथपर पड़ गयी । वहाँ भान हुआ कि अँगुली जल गयी और खीरका बर्तन हिलकर गिर गया । अब हो तो रहा था ध्यान; पर ठीक खीरका गरम कटोरा हाथमेंसे गिर जायगा और हँसते हुए भगवान् प्रकट हो जायँगे । ध्यानमें ही भक्त चूल्हेपर खीर बना रहा था, लकड़ी जल रही थी । खीर उतारी, कटोरेमें डाली,कटोरेको उठाया, उठाते ही अँगुली हिली, हिलनेसे कटोरा गिर गया । आँख उसी समय खुल जाती है तथा देखता है कि एक कटोरेमें खीर गिर गयी है और भगवान् हँसते हुए सामने खड़े हैं ।

मधुर भावके, गोपीभावके संतलोग तो विचित्र-विचित्र तरहकी लीला करते हैं । वहाँ तो बड़े-छोटेका संकोच ही नहीं । कभी चपत लगा देते हैं । श्रीकृष्ण चपत खाकर रूठ जाते हैं । अब वे गोपीभावापन्न संत उन्हें मनाते हैं। मनाते समय श्यामसुन्दर तरह-तरहकी शर्त पेश करते हैं । यह ला दो तो मानकर फिर तुम्हारे साथ खेलूँगा । वहाँ अत्यन्त सुन्दर लीला हुई । अब उसमें कुछ श्यामसुन्दरको वह लेकर देने जा रहे हैं । वह चीज तो मानसिक थी, पर आँख खुल जाती है और वे देखते हैं कि वही चीज यहाँ इस हाथमें है।

एक बार दो भक्त थे ! वृन्दावनकी बात है । दोनों अपनेको श्यामसुन्दरकी सखी मानकर सखीका शरीर धारण करके सेवाकी भावना करते थे । सेवाकी साधनामें बहुत ऊँचे उठ गये थे । एक दिनकी बात है कि राधाकुण्डमें जल-विहारकी लीला चल रही थी । वे उसीके ध्यानमें लगे हुए थे । लीला होते-होते श्रीप्रियाजीके कानोंका कुण्डल जलमें गिर गया । अब संत तो वहाँ सखीके वेषमें थे । अतः उनकी सखी राधारानीका कुण्डल गिरनेसे वे घबड़ाकर पानीमें डुबकी मारकर खोजने लगे । इधर ध्यानमें तो एक दो मिनट ही बीता था, पर यहाँ सात दिन बीत गये । लोगोंने देखा कि आँखे बंद हैं, श्वास धीरे-धीरे चल रहा है, सात दिन एक आसनसे बैठे बीत गये हैं । उनके एक मित्र थे । उनका नाम शायद रामचन्द्रजी था । उनको लोगोंने समाचार दिया । वे स्वयं भी पहुँचे हुए थे । उन्होंने आकर देखा--देखते ही समझ गये कि यहाँ तो कुण्डलकी खोज चल रही है । बस, चटसे वे उन्हींके बगलमें बैठ गये । ध्यानमें ही वहाँ पहुँचे तथा कुण्डल, जो एक कमलकी जड़में छिपा हुआ था, उठाकर इनके हाथोंमें दे दिया । पहनानेपर प्रियाजीने प्रसन्न होकर अपने मुँहमेंका पान उनके मुँहमें दे दिया । अब पान तो ध्यानमें दिया था, पर उसी समय आँखें खुलीं । देखते हैं कि मुँह पानसे भरा हुआ है । दोनों मित्र हँसने लग गये और लोगोंने कुछ नहीं समझा । केवल इतना ही देखा कि सात दिन बाद पान चबाते हुए उठे जब दो प्रेमी साथी मिलकर ऐसी सेवाकी साधना एक साथ करते हैं तथा दोनों ही जब

ऊँची स्थितिमें पहुँच जाते हैं, तब एक–दूसरेकी क्या अवस्था है, यह भगवान्‌की कृपासे वे जान लेते हैं । यह योगकी बात नहीं है । यह तो साधनके साम्यकी बात है तथा भगवदिच्छासे ऐसा हो जाता है ।

जैसे गोपियाँ श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिये एक साथ मिलकर कात्यायनीकी उपासना करती थीं । वैसे ही यहाँ भी कोई–कोई ऐसे मित्र होते हैं, जो मिलकर एक–दूसरेसे हृदयकी बात बताते हुए साधना करते हैं । फिर उनसे एकको दूसरेकी अपस्थाका श्यामसुन्दरकी इच्छासे ही कभी भी पता लग जाता है; सदा ही लगे, यह आवश्यक नहीं है ।

किसीकी सच्ची लगन हो तो आसानीसे सफलता मिल सकती है; क्योंकि भगवान् सर्वथा सर्वदा उपस्थित हैं । जो चाहिये, वही कर देंगे । पहले तो चिन्तनमें जहाँ मन लगा कि सब चाह ही मिट जायगी । पता ही नहीं लगेगा कि चिन्तन है या असली । चिन्तनका अभ्यास होते ही मन दिन–रात वहीं फँसा रहेगा आपके मनमें जो चित्र आता है, उसमें भी आपकी ही कमीके कारण सब त्रुटि है; क्योंकि आप उसे ऐसा मानते हैं कि यह तो भावनाका चित्र था । सेवा हुई, नहीं हुई; चलो, कोई आ गया है तो उससे बात कर लेंगे । भगवान् देखते हैं कि यह तो हमें भावनाका चित्र मानता है, तब हम असली क्यों बनें ? नहीं तो, फिर गरमीके दिनोंमें आपको राधारानी एवं श्रीकृष्णको पंखा झलनेसे फुरसत नहीं मिले । बाहर कुछ भी करते रहेंगे, पर मनमें सिद्धदेह धारण किये हुए पंखा झलते ही रहेंगे, बाहरके काममें भले ही त्रुटि हो, पर पंखा झलना एक मिनट भी नहीं छूटेगा । कहीं किसी झंझटके काममें फँस गये तो इतना दुःख होगा कि बाप रे, हम तो मर गये । जैसे हम गरमीके कारण छटपटा रहे थे, ठीक उसी तरह यह मालूम होगा कि ओह ! आज बहुत गरमी है, देखो तो कितना पसीना श्यामसुन्दरको आ रहा है। और फिर यहाँ शरीरका ध्यान छूटकर मनमें ही पंखा झलना चलता रहेगा । पर यह इसीलिये नहीं होता कि न तो चित्र बाँधनेका अभ्यास सधा है और न उसमें असली श्रीकृष्णभाव है । भोजन करानेकी लीला चिन्तन करते हुए जैसे धीरे–धीरे चबा–चबाकर हम प्रत्येक ग्रासको खाते हैं, वैसे अनुभव होगा कि यह लड्डू है, इसे श्यामसुन्दरने तोड़ा नमकीन खाते तो ठीक रहता ! बस, उसी समय अनुभव होगा कि दही–बड़ेको तोड़कर मुँहमें रख रहे हैं । पर वह करनेसे होगा । आप जो भाव करेंगे, उसी लीलाको वे सच्ची बना देंगे । पहले तो सुन–पढ़कर दस–बारह लीलाओंका कोर्स बनाइयेगा, फिर पीछे उनकी कृपासे नयी–नयी लीलाएँ अपने–आप ध्यानमें आने लग जायँगी । आप जिन श्रीविग्रहकी सेवा करते हैं, उनके साथ भी ऐसी घटना हो सकती है । वे सचमुच आपका भोग खा सकते हैं सामने बैठकर

व्रजलीला अनन्तानन्त है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

खा सकते है; पर सारी बात इसपर निर्भर है––अटल विश्वासके साथ सच्चे मनसे चाहकर पूरी लगनसे चिन्तनमें लग जायँ । फिर कुछ भी करना नहीं पड़ेगा । मधुर–से–मधुर लीला एक–पर–एक मनमें उनकी कृपासे आयेगी और आप बस, देख–देखकर निहाल होते रहियेगा । फिर एक दिन यह शरीर छूट जायगा और उसीमें सदाके लिये शामिल हो जाइयेगा । पर यह सब अनन्य लगनके साथ करनेसे होगा ।

नन्ददासजी जब मरने लगे––अन्तमें यह पद गाते हुए मरे–

देखो, देखो री नागर नट निरतत कालिंदी तट
गोपिनके मध्य, राजै मुकुट लटक ।
काछिनि किंकिणि कटि,
पीताम्बरकी चटक
नंददास गावैं तहाँ निपट निकट ।

अर्थात् मैं बिल्कुल नजदीक खड़ा होकर यह लीला देख रहा हूँ । यह कहते हुए प्राण छोड़ दिये । आप यदि श्रीकृष्णपर निर्भर होकर साधना करें तो नन्ददासजीकी तरह मृत्यु होना कौन बड़ी बात है ।

श्रीराधा और श्रीकृष्ण सबके सामने आते हैं, पर सबको एक प्रकारकी लीलाके ही दर्शन नहीं होते। जो जितना ऊँचा अधिकारी होता है, उसके सामने उतने ही ऊँचे स्तरकी लीला प्रकट होती है । पर एक रहस्यकी बात यह है कि जो भी लीला होती है, उसमें यह अनुभव नहीं होता कि हमें कुछ कम दर्जेकी लीला देखनेको मिली है, जिसे भी जो लीला देखनेको मिलती है, यदि यथार्थ मिलती है तो वह इतनी विलक्षण होती है कि उसके लिये उसके सिवा और कुछ भी बच नहीं रहता । न यह जगत् रहता है, न संसार, न कुछ और बात, बस, वही–वही रह जाती है । और फिर उसीपर नया–नया रंग चढ़ता जाता है तथा वह रंग इतना चढ़ता है कि बस, उसकी कोई सीमा नहीं, नित्य नया–नया हो जाता है ।

जो लीलाएँ बहुत ही उच्च कोटिकी होती हैं, उनमें ऐश्वर्य बिल्कुल नहीं होता । जिसके मनमें जरा भी ऐश्वर्यकी ओर टान रहती है, उसे उन लीलाओंको सुनकर आश्चर्य होता है । भजन करते–करते पहले पूर्ण ज्ञान हो जाता है, इसके बाद वह ज्ञान धीरे–धीरे छिपने लगता है, तब मधुर लीलाओंका प्रकाश होता है । श्रीराधा–कृष्णकी लीला एक–से–एक मधुर है, जितना भक्त ऊँचा उठता है, उतनी ही वह मधुरता गहरी होती जाती है । इसकी कोई सीमा नहीं है । आजतक जितने भक्त हुए हैं, उन्हें जो–जो अनुभव हुए हैं और वे जितना वाणीमें कह सके हैं उसीका वर्णन हम लोगोंको प्राप्त होता है । पर वह उतना ही हो, यह बात

नहीं। वह तो अनन्त है, असीम है । कोई उससे भी ऊँचा भक्त हो तो उससे भी ऊँची तथा और भी विलक्षण मधुर लीला भगवान् उसे दिखा सकते हैं ।

मन किसी प्रकार भी लीलामें फँस जाय तो काम बन गया । सोचिये–गायोंकी कतार खड़ी है, श्यामसुन्दर हाथमें दोहनी (दूध दुहनेका पात्र) लेकर खड़े हैं । गायें हरी–हरी दूब चर रही हैं । श्यामसुन्दरका सखा सुबल पासमें खड़ा है । प्रत्येक गाय रंभा रही है तथा चाहती है कि श्रीकृष्ण पहले उसे दुहें । श्रीकृष्ण तो भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं । एक ही समय एक क्षणमें जितनी गायें हैं, उतने रूपोंमें प्रकट होकर दुहने बैठ जाते हैं । बछड़ा श्रीकृष्णकी पीठ सूँघ रहा है । गाय श्रीकृष्णका सिर सूँघ रही है । दूर पर श्रीराधारानी सखीके कंधे पर हाथ रखकर यह छवि निहार रही हैं । उनकी आँखोंमें प्रेमके आँसू झरते जा रहे हैं। अब इन्हीं गाय, दूध, बछड़ा–किसीमें भी मन लगा रहे और मृत्यु हो जाय तो इससे बड़ी सुन्दर मृत्यु और क्या होगी ?

निराश नहीं होना चाहिये । कभी किसी दिन एक क्षणमें ऐसी घटना हो जायगी कि बस, उस रस–समुद्रमें बह जाइयेगा । उसमें यह नियम नहीं कि धीरे–धीरे उठते–उठते तब होगा । किसी दिन हठात् कोई ऐसी कृपा की आँधी आयेगी कि उड़ाकर, बिलकुल जमीनपरसे उठाकर रस–समुद्रके ठीक मध्यमें ले जाकर पटक देगी । वहाँ से फिर लौटना असंभव होगा । किनारे जबतक पड़े हैं तभी तक आगे बढना, पीछे लौटना बन रहा है । परन्तु यह आँधी इतनी दूर उड़ा ले जायगी कि फिर जमीन का ओरछोर भी दिखना बन्द हो जायगा।

बस इतना ही कहना है कि जबतक यह कृपाकी आँधी न आवे तबतकका काल–क्षेप निरन्तर नाम–जप करते हुए बिताइये, साथमें मानसिक लीला–चिन्तन चलता रहे ।

राधा राधा राधा

।।श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।
पत्र संख्या–३१

कृपाकी बाट जोहैं

रतनगढ़
तिथि उल्लिखित नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ।

आपका पत्र मिला । कृपाके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें तीन उपाय बताये हैं।

१. ऐसी कृपा होनेकी बाट देखता रहे । अब हुई, अब हुई, अब हो जायगी, कल हो जायगी, इस महीनेमें तो हो ही जायगी, इस वर्षमें तो निश्चय हो ही जायगी, हो ही जायगी – इस प्रकार प्रतिक्षण जिस प्रकार एक दरिद्र दिवालिया जूएकी बाजी जीतजानेकी बाट जोहता है तथा सौदा करता ही चला जाता है, वैसे ही भगवत्कृपाकी आशामें जो अपने पास है, सब फूँकता चला जाय। समस्त वस्तुओंको भगवत्प्रेमके लिये होमकर कृपाकी बाट जोहे । यहाँके जूएमें तो जीत चाहे न भी हो, पर वह कृपा तो आयेगी ही, भगवान्‌की कृपाकी इस बाजीमें तो जीत होगी ही ।

२. जो सुख–दुःख आकर प्राप्त हो जाय, उसे खूब प्रसन्नतासे ग्रहण करे–यह समझकर कि हमारा ही तो किया हुआ है ।

(३) हृदयसे, वाणीसे, शरीरसे निरन्तर भगवान्‌को नमस्कार करता रहे।

जो इस प्रकार जीवन बिताता है, उसे मुक्ति तो उत्तराधिकारके रूपमें ही मिल जाती है, भगवप्रेम भी उसे मिल जाता है ।

जब श्रीवनवास मिल्यौ सजनी
तब तीरथ आन गए न गए ।
जब लाड़िलि लाल कौ नाम लियौ,
तब नाम न आन लए न लए ।
पदकंज किसोरिहि चित्त पग्यौ,
तब पायन आन नए न नए ।।
जब नैन लगे मन मोहन सौं
तब औगुन आन भए न भए ।।

कृपाकी बाट जोहैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

व्रजके एक बहुत पहुँचे हुए महात्मा हुए हैं–श्रीललितकिशोरीजी, उन्हींका यह पद है । ऐसी ही निष्ठा आगे चलकर रसिक भक्तोंकी हो जाती है । पदका भाव यह है–यदि श्रीप्रियाजीके कुञ्जमें बसनेका–बृन्दावनमें बसनेका सौभाग्य मिल गया तो फिर दूसरे तीर्थोंमें गये अथवा न गये । जाना, नहीं जाना बराबर है । समस्त साधनाका फल तो व्रज–वासके रूपमें मिल गया । अब और तीर्थोंमें जाकर क्या होगा । दूसरी बात यह कि जब प्रिया–प्रियतम, लाड़िली–लालका नाम मुँहसे निकल गया, तब फिर दूसरे नाम, दूसरी चर्चा मुँहसे निकली या न निकली । आवश्यकता ही कुछ नहीं है । तीसरी बात, जब श्रीप्रियाजीके चरणकमलोंमें चित्त झुककर उसमें फँस गया–उस रंगमें पग गया, तब फिर और किसीके चरणोंमें सिर नवाया या नहीं नवाया–दोनों बराबर हैं ! चौथी बात–जब दृष्टि मनमोहनसे लग गयी, नैन मोहनसे जा लगे, तब फिर दूसरा कोई अवगुण हुआ या नहीं हुआ, दोनों बराबर हैं । किसी परपुरुषमें दृष्टि लगाना बड़ा अवगुण है, पर जब वही दृष्टि श्रीमनमोहन रूप सुधाचन्द्रमें लग जाती है, तब वह परम सदगुण बन जाता है।

इस प्रकार श्रीकृष्णप्रेमका भिखारी बस, चार लक्ष्य सामने रखकर बढ़ता है–जगत्‌की परवाह मिटाकर बढ़ता है । कौन क्या कहता है, इसकी ओर उसकी दृष्टि नहीं रहती । वह बिल्कुल सर्वथा जगत्‌की ओरसे, समस्त योग्यताकी ओरसे मुँह मोड़कर रम जाता है, प्रियतम प्रभुके नाम, रूप, लीला, धाम–इन चार चीजोंमें। अभ्यासके द्वारा जैसे हो, जिस प्रकार हो, बस, एक ही चर्चा, एक ही वातावरण निरन्तर बनाये रखें । लीला सुननेके लिये मिले, सुनें–नहीं मिले तो पढ़ें, चिन्तन करें । बस, मन उन्हीं बातोंमें रमता रहे । श्रीगोपीजनोंके प्रेमकी कैसी दशा होती है, इसे लिखकर तो कोई बता ही नहीं सकता । जैसे बिजलीका प्रकाश है; उसे देखकर जिसने कभी सूर्यके निर्मल प्रकाशको नहीं देखा है, वह अनुमान ही नहीं कर सकता कि वह कितना निर्मल प्रकाश है । ठीक इसी प्रकार आप जितनी बातें सुनते हैं, उनको सुनकर वास्तविक श्रीगोपी–प्रेमका क्या रूप है, यह ठीक–ठीक अनुमान ही आपको नहीं हो सकता । वह तो सूर्यकी किरणोंकी तरह अत्यन्त निर्मल प्रकाशमय वस्तु है, ज्ञानके परेकी चीज है। उसे तो देखकर उनकी अनन्त कृपा होनेपर ही उसका यत्किंचित् स्वरूप समझा जा सकता है ।

निरन्तर उनके चरणोंमें रो–रोकर प्रार्थना करनेसे ही कुछ अनुभवमें, कल्पनामें आ सकता है । इसलिये लीला पढ़ें, सुनें, प्रार्थना करें, निरन्तर कृपाकी भीख माँगते ही चले जायँ और जहाँतक बने, अब मनको प्रपञ्चके कामोंसे दूर रखनेकी चेष्टा करें । एकान्तमें बैठकर रोयें, श्रीप्रिया–प्रियतमके चरणोंमें बैठकर उनके सामने रोयें । सच्चा रोना न हो, न सही । झूठे ही जैसा भाव हो, उसीको लेकर

कृपाकी बाट जोहैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

रोयें–नाथ ! इस नीरस हृदयको सरस बनाओ, इस सूखे हृदयमें अपने प्रेमका एक कण देकर इसे भर दो । प्रभो ! अपनी ओर, अपनी कृपाकी ओर देखकर ऐसा करो । निश्चय मानिये, बार–बारकी प्रार्थना व्यर्थ जा ही नहीं सकती । झूठीको वे अपनी कृपासे सच्ची बना देते हैं ।

अभ्यास करनेके साधन पहले भी बताये गये हैं । पुनः समझ लें –

(१) कुञ्जोंका नकशा आपने देखा था । उसमें पहले श्रीविशाखाका कुञ्ज कहाँ है, यह देखकर कुछ क्षण उस समूचे कुञ्जका चित्र बाँधिये ।
(२) फिर एक कदम्बके वृक्षका सुन्दर–से–सुन्दर कल्पना कीजिये ।
(३) फिर उसकी डालियोंको देखिये ।
(४) फिर उसमें पत्ते लगे हैं, उन्हें ।
(५) कदम्बके अन्यन्त सुन्दर फूल हैं, उन्हें ।
(६) कदम्बके फूलोंपर झुंड–के–झुंड काले भौंरे हैं, उन्हें ।
(७) कदम्बकी जड़के नीचे उजला चमचम करता हुआ संगमरमरका गट्टा है, उसे।
(८) संगमरमरका गोलाकार गट्टा चारों ओर फैला है, उस गोलाईका कुछ क्षण चिन्तन कीजिये ।
(९) अंदाज दो–दो गज चारों ओरसे चम–चम कर रहा है, उसका ।
(१०) उसके नीचेकी जमीन भी संगमरमरके फर्शकी बनी हुई है, वह खूब चमक रही है, इसे देखें ।
(११) फर्शके चारों ओर बेलाके वृक्ष लगे हैं, उन्हें ।
(१२) उनमें बड़े–बड़े फूल खिले हैं, उन्हें ।
(१३) फिर चमेलीके वृक्ष हैं, उन्हें ।
(१४) चमेलीमें फूल लगे हैं, उन्हें ।
(१५) हरी–हरी दूबकी जमीन चारों ओर फैली है, उसे ।
(१६) उसपर कहीं स्थलकमल हैं, उन्हें ।
(१७) कहीं तगर, कहीं कुन्द, उन्हें ।
(१८) चारों ओर हरी–हरी झाड़ी दीख रही है, उसे ।
(१९) गट्टेके सहारे श्रीराधारानी बैठी हैं, उन्हें ।
(२०) नीली साड़ी है, यह ।
(२१) हाथमें कंकण हैं, यह ।
(२२) दोनों हाथोंमें कंकण हैं, उन्हें ।
(२३) इसके बाद अत्यन्त सुन्दर चूड़ियोंको ।

कृपाकी बाट जोहैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

(२४) इसके बाद भी एक अत्यन्त सुन्दर आभूषण है, उसको ।
(२५) बाँहके पास भी सुन्दर आभूषण हैं; उन्हें ।
(२६) पैर साड़ीसे ढका है, यह ।
(२७) मुखारविन्द शोभा पा रहा है, यह ।
(२८) सिरपर चन्द्रिका है, उसे ।
(२९) चन्द्रिकामें मोतीकी झालर लटक रही है, उसे ।
(३०) ललाटपर सुन्दर कुंकुमका गोल लाल बिन्दु है, उसे ।
(३१) सिरके पास अञ्चल कुछ बायीं ओर ऊपर चढ़ गया है, उसे ।
(३२) श्यामसुन्दर उनके दाहिनी ओर हैं, उन्हें ।
(३३) सिरपर मोर–मुकुट है, उसे ।
(३४) बड़ा ही सुन्दर मुख है, इस झाँकीको ।
(३५) आँखें बड़ी–बड़ी हैं, उस सौन्दर्यको ।
(३६) आँखें नीचेकी ओर हैं, इस लावण्यको ।
(३७) अलकावलि कुछ बिखरी हुई मुखपर आ गयी है, इस झाँकीको ।
(३८) दुपट्टा दोनों कंधोंपर लटक रहा है, यह
(३९) दोनों हाथोंसे एक तागेमें फूल पिरो रहे हैं, यह ।
(४०) श्रीप्रियाजी भी दोनों हाथोंसे फूल पिरो रही हैं, इस मनोहर दृश्यको ।

कहनेका तात्पर्य यह है कि एक लाइन पढ़कर उसमें क्या–क्या चीज आयी है, यदि उन सबपर एक–एक सेकंड भी मन रुककर उन्हें देख लें तो फिर छोटी लीलामें भी चार–छः घंटे लग जायँ । अभ्यास करनेसे होता है । मेरी समझमें यही बात आती है तथा समस्त शास्त्रोंमें एवं वैष्णव संतोंके बचनोंमें यही बात मिलती है कि मनको स्थिर करना ही पड़ेगा और स्वयं भगवान्‌ने जैसा कहा है अभ्यास और वैराग्य दोनोंके साथ–साथ पूरी तत्परतासे करनेसे ही काम बनता है। सच मानिये, इस व्रजलीलामें मन फँसानेके लिये विशेष परिश्रमकी आवश्यकता ही नहीं है। यहाँ तो एकके बाद एक, एकके बाद एक इस प्रकार मन जहाँ जाय, कुछ भी सोचे, उसी स्फुरणाके साथ व्रजकी किसी चीजको जोड़ देनेसे ही ध्यान होने लग जाता है ।

मनकी जिस समय विशेष चञ्चलता हो, उस समय उसे खूब तेजीसे नचाना आरम्भ करें । हमें लिखनेमें तो देर लगती है, पर चञ्चलताके समय उसकी बड़ी सुन्दर दवा यह है कि जोरसे उच्चारण करें, हरे राम, कृष्ण, गोविन्द। फिर प्रारम्भ करें राधाकुण्ड, निकुञ्ज, ललिता, विशाखा, चित्रा, वेदी, नदी, यमुना, गोवर्धन,गाय।

कृपाकी बाट जोहैं

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

इस प्रकार पागलकी तरह मनके सामने जो भी कोई चीज आये, उसे व्रजके भावमें जोड़ दें । मन जब कुछ भी सोचेगा, आप विचारकर देख लें, देखी–सुनी हुई बातको ही सोचेगा । जिस समय किसी स्त्रीपर ध्यान जाय उस समय पागलकी तरह गोपी, गोपी, गोपी रटने लग जायँ ! लड़केपर ध्यान जाय–बस, ठीक उसी समय सुबल, श्रीदाम, स्तोक मधुमंगल पागलकी तरह रटें । इसके बाद ध्यानमें आया घर–मकान बस, ठीक वहीं, उसी स्थानपर देखें, ना, यहाँ तो कुञ्ज है, महल है, ना, वह देखो, ललितारानीका कुञ्ज है । अहा ! कैसी झाड़ी है, कैसा सुन्दर सरोवर है, कैसा उपवन है । यह शब्द उच्चारण होते ही फिर आगे चलकर वह चित्र भी सामने आ जायगा। पर यह तभी होगा जब कि जीवनका उद्देश्य बस, एक ही रह जाय–चाहे मरेंगे या जीयेंगे, अब तो चौबीसों घंटे व्रजमण्डलमें ही मन रमेगा, व्रजके लता–पत्र कुछ भी बनेंगे, पर अब तो बनेंगे ही ।

इस प्रकार दृढ़ निश्चय होते ही श्रीकृष्णकी सारी कृपा साधकके ऊपर बहने लगती है । लीला एक–से–एक सुन्दर तथा एक–से–एक आकर्षक–बढ़िया हैं, आकर्षक हैं, पर सभीमें मनकी आवश्यकता होगी ही। आप–जैसे मेरे पास आते हैं; अब यदि ऐसा नियम कर लें कि अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक डेढ़ घंटा जबतक इनके पास बैठूँगा, तबतक ये जैसे–जैसे लिखते जायँगे, उसका पूरा–पूरा चित्र बाँधनेकी चेष्टा करूँगा ही तो फिर चौबीस घंटोंमें डेढ़ घंटा आपका ध्यान हो गया। इसके बाद यदि घरपर नियमसे, आज जिस लीलाको सुनें, कल ठीक चार घंटे उसमें मन लगाना ही है, इस भावनासे दृढ़तापूर्वक साधन करें, तब तो फिर पाँच–छः घंटे प्रतिदिन साधन होगा । तथा यदि विषयका संग नहीं हुआ, उससे बचे रहे, तब तो फिर उन्नति होनी ही चाहिये । पर बिना तत्परताके कुछ भी होना कठिन है।

विषयोंका संग वह है, जो भगवान्से हटाये । जो भी वस्तु भगवान्के प्रति आकर्षण कम करें, वही विषय है ।

श्रीकृष्ण तो कृपाके समुद्र हैं, उनके उन्मुख होना चाहिये; फिर उनमें पक्षपात थोड़े है कि उसपर कृपा करूँ, इसपर नहीं करूँ ।

अब सोचिये–इस समय अँधेरा हो गया है; यहींपर एक नहीं, एक साथ अनंत लीलाएँ चल रही हैं । किसीके एक कणमें मनको डुबाइये । सोचिये, श्रीराधाजीके हाथकी बनी हुई रसोईको नन्दबाबाके साथ श्रीकृष्ण आरोगनेकी तैयारीमें खड़े हैं, मैया यशोदा ज्ल्दी–जल्दी कभी भीतर आती हैं, कभी बाहर जाती हैं ! कभी सोचती हैं– ओह ! दूधमें मिश्री डालना भूल गयी हूँ और चूल्हेके पास दौड़कर जाती हैं । श्रीकृष्ण अन्यमनस्क–से होकर अपने महलमें बाहरके बरामदेमें

खड़े ऐसा भाव प्रकट कर रहे हैं मानो उनकी दृष्टि अन्धकारको चीरकर किसीको देखना चाहती हो ।

इधर नन्दबाबाके दरबारकी तैयारी होने जा रही है । कोई बाजा लेकर, कोई पोशाककी पेटी लेकर दरबारकी ओर जा रहा है । नन्दबाबाकी पगड़ी हिल जाती है । श्रीकृष्णका हाथ नन्दबाबा पकड़े हैं, अब वे चल रहे हैं; सीढ़ियोंसे चढ़ रहे हैं । अब एक–एक वस्तुको यदि मन देखने लगे तो इतनी–सी बातमें दो घंटे बीत जायँगे । प्रतिदिन तीन–चार घंटे लीला–चिन्तन में बिताना कौन बड़ी बात है और तारीफ यह है कि कहीं किसी चीजमें मन डूबा कि श्रीकृष्णकी कृपा लीलाका प्रकाश करके मनको खींच लेगी । श्रीकृष्णकी धारणा नहीं होती, न सही; वैजयन्तीमालाकी धारणा नहीं होती, न सही; वैजयन्तीमालाकी धारणा, उनके किसी अंगकी धारणा, सीढ़ियोंकी धारणा, नन्दबाबाकी पगड़ीकी धारणा भी नहीं होगी ? होगी, अवश्य होगी । खूब शान्तिसे, अखण्ड उत्साह लेकर उनकी कृपासे किसी व्रज–भाव–भाक्ति वस्तुको सोचते चले जाइये, फिर तो श्रीकृष्ण खिंचे हुए, बँधे हुए उसीके साथ प्रकट होंगे ही ।

जैसे–जैसे वृत्तिकी मलिनता दूर होगी, वैसे–वैसे जो राधाभाव, श्रीराधाजीका रूप, श्रीकृष्णका रूप है, उसपर नया–नया रंग चढ़ता जायगा और यह रंग चढ़ना कभी समाप्त ही नहीं होता–चढ़ता ही चला जाता है, क्योंकि वह रूप अनन्त है ।

अभी मान लें आप ध्यान कर रहे हैं–मीठे झीने सुरमें श्रीकृष्ण बाँसुरीमें सुर भर रहे हैं, गायें पूँछ उठा–उठाकर गोशालामें इधर–उधर दौड़ रही हैं; नन्दबाबाके हजारों दास गायोंकी खड़ी हुई कतारके पास बैठकर दूध दुह रहे हैं, श्रीकृष्णकी दृष्टि दूरपर खड़ी हुई श्रीराधारानीपर लग रही है । x x x बस, इतना–सा ही ध्यान प्रतिक्षण नये–नये रंगमें, नये–नये भावमें रँगता चला जायगा । इसका स्वरूप कुछ दिनोंके बाद ऐसा हो जायगा, उस ध्यानमें और पहलेके ध्यानमें इतना गहरा अन्तर हो जायगा कि आप चकित रह जायँगे । ऐसे ही किसी भी लीलाका रंग, भाव सब बदल जायगा । एक बार पूरी चेष्टा करके मनको डूबनेका अभ्यासी बनाइये फिर देखेंगे–नया–नया रस मिलेगा ।

रासलीलाकी फलश्रुति है कि 'इसे श्रद्धापूर्वक सुननेवाला पराभक्ति प्राप्त करता है ।' पर 'अनुश्रृणुयात्' अर्थात् निरन्तर श्रवण करना चाहिये । तथा 'श्रद्धान्वितः' अर्थात् इसे ही एकमात्र साधन बनाकर, इसपर दृढ़ विश्वास करके सुनें। यदि लीला–श्रवणका ही आप व्रत ले लें तो केवल एक यही उपाय कृपाको प्रकाशित कर देगा; परंतु यह भी होगा पूरी लगनसे, पूरी तत्परतासे ।

कृपाकी बाट जोहैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

एक बात सदाके लिये सभीको ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवत्कृपाका प्रकाश होकर अधिकारानुसार प्रेम प्राप्त कर लेना चेष्टाकी सफलतापर बिल्कुल निर्भर नहीं है । यह निर्भर है भावपर अर्थात् इसने कितनी सत्यतासे साधनको पकड़े रहनेकी चेष्टा की है । बेईमानी की है कि नहीं–इसीपर फैसला होता है।

एक बार एक संतने कहा था कि संतोंके संगमें किसी प्रकार टिके रहो। प्रेमी संतोंके अंदर जो प्रेमसमुद्र लहराता रहता है, वह बराबर प्रकट नहीं रहता, छिपा हुआ रहता है । किसी दिन उसमें उफान आया, तुम पासमें रहे और तुमपर एक छींटा भी पड़ गया कि उसी क्षण बिना किसी परिश्रमके भगवत्प्रेम प्राप्त करके कृतार्थ हो जाओगे ।' भाव यह था कि प्रेमी संतोंके संगका लाभ तो अमूल्य होता ही है; पर कभी–कभी उनका जो भगवत्प्रेम है, वह बाहर प्रकट होकर बहने लग जाता है । सदा ऐसा नहीं होता, अब कल्पना करें, कोई सदासे संगमें रहता आया है । वह यदि उस क्षण वहाँ उपस्थित रहता तो उसे उस प्रेमके प्रभावसे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जायगी । इसलिये कोई भी दूसरी लालसा, दूसरी शर्त न रखकर,, धैर्य रखकर संतोंका संग करना चाहिये ।

वास्तवमें बात यह है कि भगवत्प्रेम साधनासे नहीं मिलता । यह तो उसीको मिलता है, जिसे भगवान् या कोई प्रेमी संत दे दें । मोक्ष साधनासे मिल सकता है, पर प्रेम नहीं । महाप्रभुके जीवनसे यह बात भलीभाँति प्रमाणित हो जाती है । एक मक्त थे; वे बेचारे सबको प्रेममें विभोर होते देखते, पर उनको प्रेम नहीं होता । एक दिन वे महाप्रभुका चरण पकड़कर रोने लग गये । महाप्रभुने कहा–'अच्छा, कल गंगा–स्नान करके आना ।' कल हुआ, वे गंगा–स्नान करके आये । प्रभुने उन्हें छू दिया । उसी क्षण वे प्रेमावेशसे मूर्च्छित होकर गिर पड़े । सचमुच प्रेम कुछ इतनी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ कहीं भी वह प्रकट होता है वहाँ प्रायः ऐसे ही एकाएक प्रकट होता है । श्रद्धा होनी चाहिये ।

पद्मपुराणमें एक कथा आती है–एक राजकुमार था । उसके मनमें आया–कैसे भजन होता है, श्यामसुन्दरका प्रेम क्या वस्तु है, किससे जाकर पूछूँ, कौन बताये ! इसी चिन्तामें वह सो गया । उसके घरमें एक ठाकुरजीका विग्रह था । उन्हींके विग्रहके सम्बन्धमें स्वप्न आरम्भ हुआ । स्वप्नमें उसने देखा कि वह विग्रह राधा–कृष्णके रूपमें बदल गया । वहाँ उसे साक्षात् श्रीराधा–कृष्ण दीखने लगे । सखियाँ भी दीखने लगीं । फिर श्रीकृष्णने अपनी बायीं ओर बैठी हुई एक सखीसे कहा–'प्रिये ! उसे अपने समान बना लो ।' वह गोपी आज्ञा पाकर आयी, राजकुमारके पास खड़ी हो गयी तथा अभेद भावसे राजकुमारका चिन्तन करने लगी । राजकुमारने देखा कि एक क्षणमें ही उसके सारे अंग बदल गये, उसके

कृपाकी बाट जोहें
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

हाथ, पैर, सिर, मुँह, नाक–सब बदल गये और वह एक अत्यन्त सुन्दर गोपी बन गया । उसके बाद उस गोपीने इसे एक वीणा दे दी और कहा कि 'यह लो, श्यामसुन्दरको भजन सुनाओ ।' उसने भजन सुनाना आरम्भ किया, भजन सुनानेपर श्यामसुन्दरने प्रसन्न होकर उसका आलिंगन किया, उसे हृदयसे लगा लिया । उसी समय राजकुमारकी नींद खुल गयी । राजकुमार रोने लग गया। निरन्तर एक महीनेतक रोता रहा । फिर उसने घर छोड़ दिया और वनमें जाकर कई कल्पोंतक एक मन्त्रका जप एवं युगलसरकारका ध्यान करता रहा । तब उसे सचमुच गोपीका देह प्राप्त हुआ और उसे भजन सुनानेकी वही सेवा मिली ।

नारदजीको जब दर्शन हुआ, तब एक सखीने सब सखियोंका परिचय दिया कि पूर्वजन्ममें यह अमुक ऋषि थे । उन्होंने यह मन्त्र जपा था, यह ध्यान किया था । उसी प्रसंगमें नारदजीको उस सखीने बताया कि जिस सखीके हाथमें वीणा देख रहे हो, वह पहले जन्ममें राजकुमार रह चुकी है ।'

सारांश यह है कि यों तो प्रेम कल्पोंकी साधनाके बाद कभी किसी बड़भागीको मिलता है, पर जब वह प्रेम मिलनका उपक्रम होता है, तब एकाएक होता है । उसके लिये कोई साधना है, प्रेम मिल ही जायगा–यह कहना नहीं बनता । हाँ, यह ठीक है कि सच्चे प्रेमियों या संतोका संग अमोघ होता है। वह किसी न किसी दिन प्रेम उत्पन्न कर ही देता है । आपको प्रेमी सन्तोंका संग मिला है–ऐसा आपका विश्वास है, तो निश्चय ही आपको किसी न किसी दिन भगवत्प्रेम मिलेगा, यह विश्वास रखिये । सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–३२

भगवद्‌गुणानुवाद श्रवणसे प्रेम प्रकट होता है

रतनगढ़
तिथि उल्लेख नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । सबसे ऊँचा प्रेम श्रीगोपीजनोंका ही है । इसी प्रेममें रासलीलामें सम्मिलित होनेका अधिकार मिलता है और किसी भी प्रेममें नहीं । पर यह गोपीप्रेम भी सचमुच साधनाका फल नहीं । यह तो किसी गोपी–भावापन्न संत, किसी गोपी अथवा श्रीकृष्णकी कृपासे ही प्राप्त होता है । हाँ, कृपा प्राप्त करनेके अधिकारी सभी हैं । श्रीकृष्णकी निन्दा करनेवाला भी कभी–कभी विलक्षण कृपा प्राप्त करके निहाल हो जाता है । फिर कृपा चाहनेवाला निहाल हो, इसमें संदेह ही क्या है । काशीमें भारतके एक बड़े भारी वेदान्ती थे । उससे बड़ा उस समय कोई नहीं था । नाम था स्वामी प्रकाशानन्दजी । दिन–रात भक्तोंका मजाक उड़ाया करते थे । महाप्रभु काशीमें आये, दर्शन हुए। दर्शन करते ही चित्तमें उथल–पुथल मच गयी । लंबी कथा है। फिर वे ऐसे प्रेमी बने कि दिन–रात सखीभावसे राधा–कृष्णके प्रेममें डूबे रहते । जब जीवन पलटता है, तब ऐसे ही पलट जाता है ।

भगवद्‌गुणानुवाद सुननेसे मन इस योग्य होता है कि उसमें प्रेम प्रकट हो सके । पर सुननेसे प्रेम होगा, सुननेसे प्रेम खरीद लिया जायगा–यह बात नहीं है। वह तो तभी मिलेगा, जब स्वयं भगवान् या उनका कोई प्रेमी संत दे दे ।

ज्ञान हो सकता है, मोक्ष हो सकता है, बड़े–से–बड़ा पुरुषार्थ साधनसे सिद्ध हो सकता है, पर प्रेम इतनी दुर्लभ वस्तु है कि साधनाके मोलमें नहीं मिलता । यदि किसीको इसका एक कण भी मिल जाय तो उसकी ऐसी दशा हो जाय कि सब चकित रह जायँ । मुझे तो प्रेम मिला नहीं और पता नहीं, इस जीवनमें मिलेगा या नहीं, क्योंकि वह सौदेकी चीज नहीं है । वह तो श्रीकृष्ण दें या कोई प्रेमी दे, तब मिले ।

प्रेमी भक्तोंकी दशा विचित्र होती है । कोई–कोई चाहते हैं कि मैं लता बन

जाऊँ । ऐसा होनेपर फिर उसमें फूल लगेंगे और श्रीकृष्ण आयेंगे तथा अपने हाथसे उसे पकड़ कर फूल तोड़ेंगे । फूल तोड़कर श्रीगोपीजनोंके अञ्चलमें बाँधेंगे । राधाजीके साथ मेरी पत्तियोंको पकड़कर खेल करेंगे और मैं देखूँगा । धन्य है उनकी चाहना ।

व्रजकी लता बनना भी अनन्त सौभाग्यसे ही होता है । वे लताएँ यहाँकी तरह जड़ लताएँ नहीं हैं। वे लताएँ चाहते ही गोपी बन सकती हैं; क्योंकि वृन्दावनकी सभी वस्तुएँ सच्चिदानन्दमयी हैं । वहाँ केवल रूप भिन्न–भिन्न है, तत्त्वतः सभी वस्तुएँ सच्चिदानन्दमयी हैं । लीलाके लिये कोई पेड़, कोई लता, कोई पक्षी, कोई हिरन–इस प्रकार दिखायी पड़ते हैं ।

इसलिये मैं बार–बार कहता हूँ कि वृन्दावनकी किसी भी वस्तुका चिन्तन कीजिये । चिन्तन करते–करते, मान लें पेड़का चिन्तन करते–करते ही आप मर गये और पेड़ बने तो ऐसा–वैसा पेड़, मामूली पेड़ नहीं बनियेगा । वृन्दावनका सच्चिदानन्दमय पेड़ बनियेगा और चाहते ही गोपी बनकर, सखा बनकर, जैसा रूप चाहियेगा, वैसा ही बनाकर साक्षात् सेवा कीजियेगा ।

जैसे–जैसे साधक ऊपर उठता है, वैसे–वैसे ही भगवान्‌का ऐश्वर्य छिपता चला जाता है तथा शुद्ध पवित्रतम मधुर राज्यकी लीला एक–से–एक बढ़कर चित्तमें आती रहती है । अब श्रीकृष्ण राधाके लिये रोयें–यह लीला उसे आनन्द दे ही नहीं सकती, जिसका मन अभी ऐश्वर्यके आनन्दकी ओर आकृष्ट होता है और सच्ची बात तो यह है कि वर्णन इसीलिये किया जाता है कि किसी प्रकार मन पवित्र हो, नहीं तो वे लीलाएँ वाणीमें आ ही नहीं सकतीं, उन्हें तो कोई बिरला भाग्यवान् बहुत ऊँचा संत ही अनुभव करता है ।

उस मधुरलीलामें श्रीकृष्ण अपने समस्त ऐश्वर्यको भूलकर, छिपाकर प्रियतमरूपसे लीला करते तथा व्रजसुन्दरियाँ भी उन्हें सर्वथा अपना 'प्राणेश्वर' ही मानती हैं । यह बात नहीं है कि उन्हें भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान नहीं होता। बात यह है कि जब प्रेमका समुद्र उमड़ता है, तब ज्ञान छिप जाता है । वह कुछ ऐसी स्थिति है कि जिसकी कल्पना बड़े ही भाग्यवान् बिरले प्रेमी अपने अन्तरमें ही कर पाते हैं ।

'कालाचाँद गीता' एक छोटी–सी पुस्तक है । बड़ी ही सुन्दर पुस्तक है । उसमें एक स्थलपर श्रीकृष्णको रोते देखकर गोपी रोनेका कारण पूछती है। उसीके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं–'सुनो, सखि ! जहाँ प्रेम है, वहाँ निश्चय ही आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहती रहेगी । प्रेमीका हृदय पिघलकर आँसओंके रूपमें निरन्तर बहता रहता है और उसी अश्रु–जल, प्रेमजलमें प्रेमका पौधा अंकुरित होकर

निरन्तर बढ़ता रहता है । सखि ! मैं स्वयं प्रेमीके प्रेममें निरन्तर रोता रहता हूँ । मेरी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा चलती रहती है । मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं बताऊँ, पर तुमने बार–बार पूछा–तुम क्यों रोते हो ? तो आज बात कह दे रहा हूँ । मैं अपने प्रेमीके प्रेममें रोता हूँ; जो मेरा प्रेमी है, वह निरन्तर रोता है और मैं भी उसके लिये निरन्तर रोता ही रहता हूँ । सखि ! जिस दिन मेरे–जैसे प्रेमके समुद्रमें तुम डूबोगी, जिस दिन तुम्हारे हृदयमें प्रेमका समुद्र–उसी प्रेमका समुद्र जो मेरे हृदयमें नित्य निरन्तर लहराता रहता है, लहराने लगेगा, उस दिन तुम भी मेरी ही तरह बस, केवल रोती ही रहोगी । सखि ! उन आँसुओंकी धारासे जगत् पवित्र होता है; वे आँसू नहीं, वे तो गंगा एवं यमुनाकी धारा हैं । उनमें डुबकी लगानेपर फिर त्रिताप नहीं रहते । सखि ! मैं देखता हूँ, मेरी गोपी, मेरे प्राणोंके समान प्यारी गोपी रो रही है, मेरी प्रियतमा रो रही है, बस मैं भी यह देखते ही रोने लग जाता हूँ । मेरा हृदय भी रोने लग जाता है । मेरी प्रिया–प्राणोंसे बढ़कर प्यारी गोपी जिस प्रकार एकान्तमें बैठकर रोती है, वैसे ही मैं भी एकान्तमें बैठकर रोता हूँ और रो–रोकर प्राण शीतल करता हूँ । यह है मेरे रोनेका रहस्य ।'

सोचकर देखिये – जिस साधकका, सिद्धका, भक्तका मन श्रीकृष्णके ऐश्वर्यको ही ग्रहण कर पाया है, वह इस परम मनोहारिणी लीलाका रस ले ही नहीं सकता। उसे भगवान्‌के यों रोनेकी ये बातें समझमें ही नहीं आयेंगी ।

जो शान्तभावसे उपासना करते हैं, उनके लिये केवल श्रीकृष्णका ऐश्वर्यमय रूप प्रकाशित होकर रह जाता है । उन्हें यह नहीं ज्ञात होता कि इससे परे भी कुछ और है; क्योंकि भगवान् जिस किसीको भी जिस रूपमें मिलते हैं, उसीमें उसको पूर्णताका अनुभव हो जाता है, कारण भगवान् सर्वत्र सब ओरसे परिपूर्ण हैं। इसी प्रकार दास्य, सख्य, वात्सल्यभावतककी प्राप्ति हो जाती है । पर यहाँतक श्रीराधाजी एवं उनके दिव्यभावका प्रकाश नहीं होता । वे प्रकट नहीं होतीं । जो इससे ऊपर उठते हैं, मधुरभावसे उपासना करते हैं और साधनाकी सिद्धि प्राप्त करते हैं, उन्हींके लिये श्रीराधाजी प्रकट होती हैं । वे ही इस ऐश्वर्यविहीन परम–मनोहारिणी लीलाका रस ले पाते हैं ।

एक बड़ा सुन्दर पद है –

स्याम स्याम रटत राधा, स्याम ही भई री ।
पूछत सखियन सौं प्यारी कहाँ गई री ।।

यहाँ प्रेमकी बड़ी विलक्षण अवस्था होती है । श्रीराधा श्रीकृष्ण बन जाती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधा बन जाते हैं । यह कविकी कोरी कल्पना नहीं, यह दिव्य चिन्मय प्रेमधाममें होनेवाली लीलाको अनुभव करके उसकी झाँकीका वास्तविक

भगवद्गुणानुवाद श्रवणसे प्रेमप्रकट होता है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

चित्र खींचा गया है । प्रेमरसमें डूबे हुए व्रजके कई संतोंने सचमुच इस दिव्य लीलाका साक्षात्कार किया था और तब पदरचना की थी ।

सूरदासजीका प्रयाण–काल जब निकट आया, तब गोस्वामी विट्ठलनाथजीने पूछा–'सूरदास ! मनकी वृत्ति कहाँ है ?

सूरदासने गाया है–

बलि बलि बलि बलि कुँअरि राधिके,
स्याम सुँदर जिन सौं रति मानी ।

पदका भाव यह है कि 'धन्य राधिके ! समस्त जगत्, समस्त ब्रह्माण्डको आनन्द देनेवालेको भी तुमसे आनन्द मिलता है ।' आगे कहते हैं कि 'तुम लोगोंका रहस्य बड़ा ही विलक्षण है । श्यामसुन्दर पीताम्बर इसलिये पहनते हैं कि उसे देख–देखकर तुम्हारी स्मृतिमें डूबते रहें और तुम नीली साड़ी इसलिये पहनती हो कि श्यामसुन्दरकी स्मृतिमें ही डूबी रहो ।' अन्तिम क्षणमें पूछा गया–'सूरदास ! नेत्रकी वृत्ति कहाँ है ?' उसपर गाया –

खंजन नैन सुरँग रस माते ।

यही पद गाकर उन्होंने प्राण छोड़ दिये । ऐसी ही मृत्यु श्रीकृष्ण हम सबको दें ।

प्रेमका आरम्भ यहाँसे होता है – 'भगवान्की इच्छा पूर्ण हो; वे जिस बातसे प्रसन्न हों वही हो, अनन्त जन्मों तक नरकमें रखकर वे प्रसन्न हों, तो मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये, मुझे नरकमें भिजवा दें, मुझे जलानेमें उनको सुख हो तो सदा जलायें।' यह बात नहीं कि प्रेमी ऊपरसे खाली कहता ही हो; वह सचमुच नरकमें जानेके लिये तैयार रहता है तथा यह बात भी नहीं है कि वह जानता है कि हमें नरक तो जाना ही नहीं पड़ेगा; कह दो, कहनेमें क्या लगता है । वह सचमुच ही नरककी ज्वालामें जलकर प्रियतमके सुखसे सुखी होनेके लिये तैयार रहता है । यह ठीक है कि वह नरकमें नहीं जाता; पर उसके मनमें यह बात नहीं रहती कि मैं नरकमें नहीं जाऊँगा ।

उसके मनमें स्वयं शान्ति पानेकी, स्वयं सुख पानेकी बिलकुल–रत्तीभर भी इच्छा नहीं रहती । इसीलिये शास्त्रोंमें प्रेमको पंचम पुरुषार्थ कहते हैं, इससे परे अब कोई और पुरुषार्थ नहीं है ।

श्रीकृष्ण स्वयं किसी दिन गाकर सुना दे; फिर तो जगत्का समस्त संगीत, सारी राग–रागिनियाँ अत्यन्त तुच्छ हो जायँ, क्योंकि यहाँकी समस्त मधुरता उनकी मधुरताके समुद्रकी एक बूँदके बराबर भी नहीं है । सोचकर देखिये – गानेवालेके गलेकी आवाजमें मिठास कहाँसे आती है ? भला रेडियोमें, इतने गानेवालोंके

भगवद्गुणानुवाद श्रवणसे प्रेमप्रकट होता है

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

गलेमें जो इतना मिठास भरता है, वह स्वयं कितना मधुर गाना गाता होगा । यदि श्रीकृष्णकी मधुरतापर सचमुच विश्वास हो जाय तो प्राण व्याकुल हो जायँ कि वे कैसे मिलें ।

नन्ददासजी व्रजके एक बड़े प्रेमी महात्मा हो गये हैं । ये तुलसीदासजीके गुरुभाई थे । पीछे रामप्रेमीसे कृष्णप्रेमी बन गये । एक दोहा प्रसिद्ध है, गोस्वामी तुलसीदासजीने यह लिखकर भेजा –

कहा कमी रघुनाथमें छाँड़ी अपनी बान ।

श्रीरामचन्द्रमें क्या कमी थी कि अपनी बान छोड़ दी अर्थात् रामको छोड़कर कृष्णको भजने लगे । उसीके नीचे नन्ददासजीने लिखकर भेजा – (कमी कुछ नहीं, राम–कृष्ण सर्वथा एक हैं; पर)

मन बैरागी ह्वै गयौ सुन बंसी की तान ।

कहनेका मतलब यह है कि कब भगवत्कृपा प्रकाशित होकर जीवन ऊपर उठ जायगा–यह कोई नहीं कह सकता । अतः कृपाकी आशा लगाये रहना चाहिये। चाहे किसीका जीवन कितना ही पतित क्यों न हो, कभी निराश नहीं होना चाहिये । उनकी कृपा होगी तब एक क्षणमें सारा नकशा पलट जायगा । इससे अधिक और क्या कहूँ !

राधा राधा राधा राधा

।।श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–३३

महात्माओंकी दृष्टि पड़ते ही जीवन सुधर सकता है

रतनगढ़

तिथि अज्ञात

प्रिय श्रीशिवभगवान जी

सादर सस्नेह श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला ।

महात्माओंकी दृष्टि पड़ते ही क्षणभरमें जीवन सुधर सकता है । दक्षिणमें एक भक्त हुए हैं, उनका नाम धनुर्दास था । एक वेश्या थी–हेमाम्बा नाम था उसका । बड़ी सुन्दरी थी । उसके रूपपर वे मुग्ध थे। भगवान्में भक्ति बिल्कुल नहीं थी । शरीर खूब हट्टा–कट्टा था । लोग उन्हें पहलवान कहते थे । बिचारेके अन्दर कामवासना नहीं थी, रूपका मोह था। उसे रूप बड़ा प्यारा लगता था । दिन बीतने लगे । रंगजीके मन्दिरमें उत्सव प्रतिवर्ष हुआ करता था और वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजजी महाराज मन्दिरमें आया करते थे। लाखोंकी भीड़ होती थी । कीर्तनका दल निकलता था । पहलवानजी और वेश्याके मनमें भी उत्सव देखनेकी एक साथ इच्छा हुई। वे लोग भी आये । कीर्तनमें लोग मस्त थे । भगवान्की सवारी सजायी गयी थी । हजारों आदमी आनन्दमें पागल होकर नाच रहे थे । पर पहलवानजीको उस वेश्याके मुखकी शोभा देखनेसे ही फुरसत नहीं थी । वे वहाँ भी एकटक उस वेश्या हेमाम्बाको ही देख रहे थे । श्रीरामानुजाचार्यजीकी दृष्टि पड़ गयी । इतने बड़े महात्माकी दृष्टि पड़ी । भाग्य खुल गया । श्रीरामानुजाचार्यजी बोले–यह कौन है ? उनको दया आ गयी थी। लोगोंमें यह बात प्रसिद्ध थी ही । सबने सारा हाल कह सुनाया । श्री रामानुजाचार्यजी डेरेपर गये और कहा, उसे बुला लाओ । पहलवानजी आये । श्रीरामानुजाचार्यजीने पूछा–'भैया ! लाखों आदमी भगवान्के आनन्दमें डूब रहे थे, पर तुम मल–मूत्रके भाण्डपर दृष्टि लगाये हुए थे । ऐसा क्यों ?' पहलवानने बताया – 'महाराजजी ! मैं कामवासनाके कारण उस वेश्याको प्यार नहीं करता, मुझे तो सुन्दरता प्रिय है । हेमाम्बा–जैसी सुन्दरता मैंने और कहीं भी नहीं देखी।

इसीलिये मेरा मन दिन–रात उसीमें फँसा रहता है।' आचार्यजी बोले–'भैया ! यदि इससे भी सुन्दर कोई वस्तु तुम्हें देखनेको मिले तो इसे छोड़ दोगे ?' पहलवान बोले – 'महाराजजी ! इससे भी अधिक सुन्दर कोई वस्तु है, यह मेरी समझमें नहीं आता ।' आचार्यजी बोले–'अच्छा, संध्याको मन्दिरकी आरती समाप्त होनेके बाद आ जाना । केवल मैं रहूँगा ।' पहलवानजी 'अच्छा' कहकर चले गये । श्रीरामानुजाचार्यजी मन्दिरमें गये, भगवान्से प्रार्थना की–'प्रभो ! आज एक अधमका उद्धार करो । एक बारके लिये उसे अपने त्रिभुवन–मोहनरूपकी एक हल्की–सी झाँकी दिखा दो।' इतने बड़े महात्माकी प्रार्थना खाली थोड़े जाती । अस्तु, संध्या समयको पहलवान आये । श्रीरामानुजाचार्यजी पकड़कर भीतर ले गये और श्रीविग्रह (मूर्ति) की और दिखाकर बोले–'देखो, ऐसा सौन्दर्य तुमने कभी देखा है ?' पहलवानने दृष्टि डाली । एक क्षणके लिये जन–साधारणकी दृष्टिमें दीखनेवाली मूर्ति मूर्ति नहीं रही, स्वयं भगवान् ही प्रकट हो गये और पहलवान उस अलौकिक सुन्दरताको देखते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े । बहुत देरके बाद होश हुआ । होश होनेपर श्रीरामानुजाचार्यजीके चरण पकड़ लिये और बोले – 'प्रभो अब वह रूप ही निरन्तर देखता रहूँ – ऐसी कृपा कीजिये।' फिर श्रीरामानुजाचार्यजीने उन्हें मन्त्र दिया । वे उनके बहुत प्यारे शिष्योंमें तथा एक बहुत पहुँचे हुए महात्मा हुए।

आज भी ऐसी घटनाएँ होती हैं, पर लोग जान नहीं पाते, यत्किंचित् जाननेपर भी अन्तःकरणकी मलिनताके कारण विश्वास नहीं कर पाते ।

सूरदासके पूर्वजन्मकी एक विचित्र बात आती है । उद्धव जब व्रजसुन्दरियोंको ज्ञान सिखाने गये थे, तब अन्तमें खूब फटकारे गये । वहाँ फिर गोपियोंने दिखाया कि देखो, श्यामसुन्दर यहाँसे एक क्षणके लिये भी नहीं गये हैं । जब उद्धवने यह देखा, तब वे दंग रह गये । फिर चेष्टा की कि भीतर निकुञ्जमें प्रवेश करें । पर ललिताजीकी आज्ञासे रोक दिये गये । उद्धवने खीझकर शाप दे दिया कि जाओ मर्त्यलोकमें । ललिताजीने भी कहा कि तब तुम भी अंधे बनकर वहीं चलो । यह प्रेमका विनोद था । पर आखिर जबान तो उनकी सच होकर ही रहती । इसीलिये एक अंशसे ललिताजीने अवतार धारण किया, उद्धवने भी एक अंशसे सूरदासके रूपमें जन्म लिया ।

ये ललिताजी अकबर बादशाहके यहाँ एक हिंदू बेगमके पास पली । बेगम उन्हें बहुत छिपाकर रखती थीं । पर एक दिन बादशाहने देख लिया । उसने जीवनभरमें ऐसी सुन्दरता देखी नहीं थी । बेगम उस लड़कीको बहुत प्यार करती थी तथा सचमुच अपनी लड़कीके समान ही मानती थी ।

महात्माओंकी दृष्टि पड़ते ही जीवन सुधर सकता है
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

एक दिन बेगमने उस लड़कीसे कहा कि 'बेटी ! तू एक दिन मेरा श्रृंगार कर दे, क्योंकि तुझे जैसा श्रृंगार करना आता है, वैसा मैंने कभी नहीं देखा ।' उस लड़कीने मामूली श्रृंगार कर दिया । बेगम बादशाहके पास गयी । उस दिन अकबरने बेगमको ऊपरसे नीचेतक देखा तथा उसके रूपको देखकर चकित हो गया । वह बोला–'बेगम ! आज तो मैं तुम्हें देखकर हैरान हूँ; सच बताओ, आज तुमने कोई जादू तो नहीं किया है ।' अन्तमें बेगमने सच बता दिया कि 'मेरी एक बेटी है, उससे मैंने श्रृंगारके लिये प्रार्थना की । उसने मुझे मामूली ढंगसे सजा दिया । यदि मनसे सजाती तो पता नहीं क्या होता ।' बादशाहके मनमें पाप आ गया । बेगम उसे लड़की मानती थी, पर बादशाहने एक नहीं सुनी । किंतु मनमें पाप आते ही अकबरके सारे शरीरमें जलन आरम्भ हो गयी । बड़े–बड़े हकीम उपचार करके हार गये, पर कोई भी लाभ नहीं हुआ। फिर बीरबलने कहा कि यह दैवी कोप है, किसी महात्माकी कृपाके बिना यह दूर नहीं होगा । उस समय सूरदास सबसे बड़े महात्मा माने जाते थे । वे बुलाये गये । सूरदासने कृपापरवश होकर जाना स्वीकार कर लिया । वे आये तथा अकबरको देखकर कहा – 'तुम्हारे पापोंके कारण ही यह हुआ है । तुमने जिस बालिकापर बुरी दृष्टिकी है, उसीके कारण यह हुआ है ।' फिर सूरदासने कहा, 'अच्छा; तमाशा देखो ।' उस बालिकाके पास खबर भेजी गयी कि एक सूरदास आया है, वह बुलाता है । बालिका हँसी और राजसभामें पहुँची । दोनों एक दूसरेको देखकर हँसे तथा बालिका देखते–ही–देखते अपने–आप जलकर खाक हो गयी । सबको बड़ा अचंभा हुआ । अकबरने प्रार्थना की । उसी पर सूरदासने एक पद गाकर उसे सारा रहस्य बतलाया कि 'यह बालिका ललिताजीके अंशसे उत्पन्न हुई थी और मैं उद्धवके अंशसे ।'

पता नहीं यह घटना कहाँतक सत्य है; पर सिद्धान्ततः यह सर्वथा सत्य है कि दिव्यलोकके प्राणी एवं भगवान्‌की लीलाके परिकर इस युगमें भी अपने अंशसे भगवदिच्छासे प्रकट होते हैं । इसलिये यह कहा नहीं जा सकता कि किस वेषमें कौन है; सबको साक्षात् भगवान् मानकर सम्मान करनेमें ही लाभ है।

जो ईमानदार नास्तिक होते हैं अर्थात् ठीक–ठीक जैसा भीतर मानते हैं वैसा ही कहते हैं, दम्भ नहीं करते, उनपर भगवान्‌की कृपा दाम्भिकोंकी अपेक्षा शीघ्र प्रकाशित होती है ।

हालकी बात है । वृन्दावनमें एक महात्मा थे । वे इस समय हैं या नहीं पता नहीं । खूब भजन करते थे, पर पहले बहुत नास्तिक थे, कलकत्तेमें रहते थे, दलाली करते थे । श्रीकृष्णकी लीला एवं रासलीलाका मजाक उड़ाया करते

थे, बुरी तरह नास्तिक थे । कलकत्तेमें किसीके घरपर रासलीला हो रही थी। वे भी मजाक उड़ानेके लिये देखने गये । रासलीला हो रही थी । कौन–सी लीला थी, यह मुझे याद नहीं है । मुझे एक अत्यन्त विश्वासी आदमीने सब बातें बतायी थीं । पर अब पूरी तरह याद नहीं है। जो हो, रासलीला देखते–देखते हठात् श्रीजी जो बने थे, उनकी जगह एक क्षणके लिये वास्तविक राधारानी प्रकट हो गयीं और केवल उन्हींको दर्शन हुए । बस, उसी क्षण सब छोड़–छाड़कर वृन्दावन चले आये और माला फेरते रहे ।

वृन्दावनके वृक्षोंकी भी बड़ी विचित्र बात है । एक महात्माने अत्यन्त विश्वासपूर्ण स्वयं जाँच की हुई कई घटनाएँ हमको एवं भाईजीको सुनायी थीं ।

एक पेड़ था । उसे काटनेकी तैयारी हुई । रातमें एक मुसलमान दारोगाको स्वप्न हुआ कि देखो, 'मैं काशीमें एक विद्वान् ब्राह्मण था, बहुत तपस्या करनेपर मुझे व्रजमें पेड़ होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है । लोग कल मुझे काटनेकी तैयारी कर रहे हैं, तुम बचाओ । वह मुसलमान था, पर सब पता ठिकाना–आदमीका नामतक स्वप्नमें बताया गया था । इसलिये उसे जाँचनेकी इच्छा हुई । जाँचनेपर सब बातें ज्यों–की–त्यों मिलीं । उसे पहले कुछ भी इस विषयमें ज्ञात नहीं था ।

दूसरी घटना उन्होंने सुनायी थी–एक साधु जंगलमें एक लताके नीचे शौच होने जाते थे । वहाँ कुछ आवाज आती, पर वे समझ नहीं पाते । फिर उनको या शायद उनके साथीको स्वप्न हुआ या दर्शन हुआ–ठीक याद नहीं; जिससे पता लगा कि उस लताके रूपमें कहींकी एक चमारिनने बड़ी भक्तिकी, उसके फलस्वरूप जन्म धारण किया था । उसने बताया कि 'तुम्हें स्त्रीके पास जाकर शौच होनेमें लाज नहीं आती ? प्रतिदिन तुम्हें चेतावनी देती हूँ, पर तुम समझते नहीं । देखो, व्रजकी लता एवं वृक्षोंके नीचे शौच मत जाया करो ।' भागवतमें तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने यह बात कही है कि यहाँके पेड़ प्रायः बड़े–बड़े ऋषि हैं, जो वृक्ष बनकर मेरा और श्रीबलरामजीका दर्शन करते हैं ।

व्रजमें अब भी बहुतोंको बहुत सुन्दर–सुन्दर अनुभव होते हैं । एक साधु थे । भगवान्के दर्शनके लिये सब जगह घूमे, पर कहीं कोई अनुभव नहीं हुआ । सोचा, अब अन्तिम जगह गिरिराज चलें ! वहाँ किसी–न–किसी रूपमें दर्शन देनेकी भगवान् अवश्य कृपा करेंगे । व्रजमें आये । न जान, न पहचान । एकादशीका दिन था । फलाहार कहाँ मिले ?' एक बालक आया । बोला, बाबाजी! मेरी माँ एकादशी करती है ब्राह्मण जिमानेके लिये आपको बुला रही है । बाबाजी गये । बुढियाने प्रसाद बड़े प्रेमसे दिया । भरपेट खाकर बोले – "वह बालक कहाँ गया माई ?' बुढ़िया बोली–'बालक कौन ?' वे बोले–जो हमें लाया था ।' बुढ़िया

बोली–'मेरा न तो कोई लड़का है, न मैंने किसी को भेजा था । आप आ गये । मैने अतिथि समझकर आपका सत्कार कर दिया।' ऐसी बहुत–सी घटनाएँ होती रहती हैं ।

श्रीकृष्ण–कृपासे असम्भव सम्भव हो जाता है । श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर वृन्दावनके पत्थर पिघल जाते थे । आप तो फिर भी मनुष्य हैं । किसी दिन कृपा करके यदि एक हल्की–सी स्वप्नमें झाँकी उन्होंने दिखायी तो बस, पागल होकर जीवनभर रोते ही रह जायँगे ।

महाप्रभु संन्यासके बाद जब शान्तिपुरसे नीलाचल रहनेके लिये चलने लगे, तब सब कोई रो–रोकर बेहोश होने लगे । बड़ा विचित्र दृश्य था ! सभी धूलिमें लोटकर छाती फाड़कर रो रहे थे । आँखोंसे आँसूका फव्वारा छूट रहा था । एक श्रीअद्वैताचार्य ऐसे थे कि उनकी आँखोंमें आँसू नहीं थे । ये अद्वैताचार्य कोई साधारण पुरुष नहीं थे । ऐसा इतिहास मिलता है कि चालीस–पचास वर्षतक लगातार इन्होंने तुलसी–गंगाजलसे भगवान्‌की पूजा की थी और केवल यही वर माँगते रहे थे कि 'हे नाथ ! जीवोंका दुःख देखा नहीं जाता, अवतार लेकर जीवोंको भक्त बनाओ और सबका दुःख मिटा दो ।' कहा जाता है कि इनकी प्रार्थनासे ही चैतन्य महाप्रभुका अवतार हुआ था । सब रो रहे थे, पर इनकी आँखोंमेंसे आँसूकी एक बूँद भी नहीं निकली । महाप्रभु सबको छोड़कर आगे बढ़ गये । केवल अद्वैताचार्य पीछे चलते रहे । महाप्रभु सबसे अधिक इनकी बात मानते थे । जब बहुत काल तक ये नहीं लौटे तो महाप्रभुने इनसे कहा–आचार्य ! अब लौट जाइये। अद्वैताचार्यने उत्तर दिया "प्रभो ! मैं साथ चलनेके लिये नहीं चल रहा हूँ, मुझे तो आपसे इतना ही निवेदन करना है कि मेरे–जैसा अधम, पत्थर–हृदयवाला, नीरस प्राणी संसारमें दूसरा आपको नहीं मिलने वाला है। देखिये ! आपके जाते समय ऐसा कोई भी नहीं कि जिसकी आँखोंसे आँसूकी धारा न बह रही हो, पर मेरी आँखोंमें एक बूँद भी आँसू नहीं।'

चैतन्य महाप्रभु हँसे और बोले–"देखिये, आपको इसका रहस्य बता देता हूँ, मुझे आपसे काम लेना था । मैंने देखा कि सब लोग तो बेहोश होकर गिर जायँगे। कोई एक आदमी ऐसा चाहिये, जो सबको सम्हाल सके। इसलिये यह देखिये मैंने अपने कौपीनमें एक गाँठ बाँधकर आपके प्रेमको रोक रखा है। पर अब जब आप रोना चाहते हैं तो लीजिये, जी भरकर रो लीजिये ।" यह कहकर महाप्रभुने गाँठ खोल दी । खोलते ही अद्वैताचार्य बेहोश होकर पछाड़ खाकर गिर पड़े और रोने लगे ।

देखें, भगवान्‌की लीला कोई भी नहीं समझ सकता । पर यह ठीक है कि

महात्माओंकी दृष्टि पड़ते ही जीवन सुधर सकता है

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

जो प्रेममें रोना चाहेगा, नहीं रोनेके कारण जिसके हृदयमें पीड़ा होती होगी, उसे भगवान्‌का प्रेम मिलेगा ही और वह रोयेगा ही । पर सम्भव है, उन्हें किसीसे कुछ काम कराना हो, कुछ लीला करानी हो–इसके कारण ही हृदयको सूखा बनाये रखते हों। उनके रहस्योंको कौन जाने । मनुष्यको अपनी ओरसे एक ही काम करते रहना चाहिये–अत्यन्त प्रेमसे निरन्तर उनका स्मरण ।

कुछ साल पहले एक प्रेमी सज्जन वृंदावन गये थे । नावपर घूमते हुए वृन्दावनकी सैर कर रहे थे । वर्षाका मौसम था । यमुनाजीमें खूब पानी था । संध्याका समय था, इतनेमें खूब वर्षा हुई । टीले, जमीन, रास्ता दीखना बंद हो गया । नावसे उतरकर वे बिचारे अकेले एक किनारे जंगलके पास खड़े थे । इतनेमें देखा कि कुछ गायें आ रही हैं तथा दो बच्चे काली कमली ओढ़े हुए पीछे–पीछे आ रहे हैं । मुझे घटना ठीक–ठीक याद नहीं है । वे शायद रास्ता भूल गये थे । बच्चोंसे पूछा । एक बच्चा बड़ा सुन्दर था। मन बरबस उसकी ओर खिंचता चला जा रहा था । कुछ बात होनेके बाद उसने रास्ता बता दिया और आगे चलने लगा । ये पीछे–पीछे चले । उसने मना किया, पर ये माने नहीं। उसी समय गाय, बच्चे आदि सभी अन्तर्धान हो गये ।

कहनेका भाव यह है कि भगवान्‌का दर्शन तो वे जब ठीक समझेंगे, आवश्यक समझेंगे, तब हो जायेगा। आपको तो केवल प्रेमपूर्वक भजन करते रहना चाहिये ।

सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।
पत्र संख्या–३४

भगवान् भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ! आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि मुझे तो भगवान्का मात्र निष्काम प्रेम चाहिये । सांसारिक कार्योंके लिये सहायता माँगना तो बहुत नीचे दर्जेकी वस्तु है । सो आपका भाव अच्छा है, परन्तु सांसारिक कार्योंमें सहायता देना और अपना प्रेम देना भगवान्के लिये तो दोनों ही समान हैं । असलमें भगवान् भक्तवाच्छाकल्पतरु हैं ; उनसे हम जो चाहें, वही वे करनेको तैयार हैं । हाँ, चाह सच्ची और दृढ़ विश्वासयुक्त होनेसे ही काम होता है ।

चटगाँवमें एक कृष्णानन्दजी साधु थे । उनका भगवान् श्रीकृष्णके प्रति सखाका भाव था । उन्होंने पूजा करनेके लिये एक श्रीकृष्णकी पत्थरकी प्रतिमा मँगवायी । मँगानेपर उनको पसंद नहीं आयी, बोले–'तुम गड़बड़ करते हो, यह नहीं चल सकती । मैं तुमको तीन दिनका समय देता हूँ, जो मूर्ति मेरे हृदयमें है, वही मूर्ति मुझे चाहिये । नहीं तो, तीन दिन बाद मैं तुम्हें गंगामें फेंक दूँगा।' भगवान्को तो विश्वास चाहिये । वे देखते हैं केवल सच्चा विश्वास । उनका विश्वास ठीक था । तीन दिनमें पत्थरकी वही मूर्ति बदलकर इतनी सुन्दर हो गयी कि क्या पूछना है । इस बार गोरखपुरमें उस मूर्तिके फोटोका हमने दर्शन किया था । ऐसा जान पड़ता है, मानो जीवित पुरुषका फोटो हो। ऐसे ही आपके ध्यानकी मूर्ति भी विश्वाससे साक्षात् बन सकती है ।

भगवान्के विषयमें एक विलक्षण बात है । वह यह कि जो व्यक्ति जिस बातके लिये जिस रूपमें विश्वास कर ले कि भगवान् हमारे लिये यह इसी रूपमें कर देंगे, फिर निश्चय समझिये बिना कुछ भी किये भगवान् उसके लिये वही उसी प्रकार कर देंगे । यह नहीं कि भजन करो, स्मरण करो । केवल मनमें यह धारणा कर ले कि बस, भगवान् हमारे लिये तो यह कर ही देंगे । भगवत्प्रेमसे लेकर तुच्छ संसारके विषयोंतकके लिये यह नियम लागू है–सबके लिये लागू है ।

भगवान् भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं

पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

कोई कहे कि 'अमुक कार्यमें आजतक तो ऐसा नहीं हुआ, क्या तुम्हारे लिये पहले–पहल होगा ?' इसका जवाब यह है कि यदि तुमने सचमुच यह बात उनपर ढार दी है तो संसारके इतिहासमें पहले–पहल तुम्हारे लिये होगा और अवश्य होगा।

व्रजप्रेमका नियम है–अमुक बात होनेपर ही यह प्राप्त हो सकता है । पर यदि सचमुच उनपर कोई ढार दे कि हमें तो यह हुए बिना ही प्रेम देना पड़ेगा, तो ठीक मानिये उसके लिये ही नया नियम बनेगा । ठीक उसकी मान्यताके अनुरूप नियम बनाकर भगवान् उसे व्रजप्रेमका दान कर देंगे ।

जब दिव्य वृन्दावन–लीलाका प्रापञ्चिक जगत्में प्रकाश होता है, तब उसमें भी कई रहस्यकी बातें होती हैं । गत बार जो नन्द–यशोदा हुए थे, उनके विषयमें भागवतमें लिखा मिलता है कि वे दोनों तपस्यासे नन्द–यशोदा बने थे । होता यह है कि जो नित्य लीलावाले नन्द–यशोदा हैं, वह भी सच्चिदानन्दमयी ही हैं, पर किसी–किसी अंशमें उसमें प्राकृत संयोग भी रहता है; क्योंकि यह लीला प्रकट ही इसलिये की जाती है कि इसके द्वारा और–और भक्तोंको इसमें शामिल किया जाय। जो नित्यलीला है, उसमें कंस आदिका वध नहीं होता । वह लीला सर्वव्यापक है, पर प्रत्येक द्वापरके अन्तमें उसी वृन्दावनके स्थानपर प्रकट होती है। वह लीला है तो यहाँ भी, इस कलममें भी है, विश्वके अणु–अणुमें है; पर प्रकट वहीं उस वृन्दावनमें हुआ करती है । नित्य लीलाके जो–जो पार्षद हैं, या तो उनका साक्षात् प्राकट्य होता है या यहाँके जीवोंमें उनका आवेश हो जाता है । श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा एवं नित्य सखियाँ तथा नित्य सखा तो साक्षात् आते हैं तथा नन्द–यशोदा–ये दोनों भी कभी साक्षात् आते हैं; पर कभी उनका आवेश भी होता है । जैसे इस बार जो लीला हुई थी, उसमें नित्य नन्द–यशोदाका तपस्यासे बने हुए नन्द–यशोदामें आवेश हो गया था ।

असल बात तो यह है कि इसका तत्व समझना असम्भव–सा है; क्योंकि असली बात पूछें तो यह प्रश्न वहींतक बनता है जबतक वह लीला सामने नहीं आती । सामने आनेपर फिर उसके सिवा कुछ बच ही नहीं जाता । केवल वह लीला–ही–लीला रह जाती है । भगवान्‌की यही तो अचिन्त्य शक्ति है कि एक ही स्थानपर एक ही समय इतनी लीलाएँ चल रही हैं । जहाँपर आपको यह घड़ी दीख रही है, वहीं अनादि कालसे जो लीला हुई है, अनन्त काल तक जो होगी, वे सभी लीलायें वर्त्तमान हैं, क्योंकि वस्तुतः घड़ीकी जगह स्वयं भगवान् ही हैं और पूर्णरूपमें हैं । जबतक आपको घड़ी दीखेगी, तबतक भगवान् नहीं दीखेंगे और जब घड़ीका दीखना बंद हो जायगा और वहाँ भगवान् दीखेंगे, उस समय यह ज्ञान

भी सर्वथा लुप्त हो जायगा कि यहाँ पहले घड़ी थी । यह घड़ीका दीखना एवं घड़ीका ज्ञान तो तभीतक है, जबतक भगवान् नहीं दीखते । उनके दीखनेपर तो वे–ही–वे रह जायँगे । इसी प्रकार उनकी कोई–सी लीला दीख जानेपर यह प्रश्न नहीं बनेगा कि कौन नित्य है और कौन पीछेकी है; क्योंकि असलमें तो जो कुछ भी है , वह सब भगवान् हैं, यह तो समझानेके लिये है । जबतक भगवान् नहीं दीख रहे हैं, तबतक भेदज्ञान–यह ऊँचा, यह नीचा यह परेकी लीला, यह इधरकी लीला आदि विचार हैं ।

आपने जो प्रश्न किया कि 'वे ग्वाले, जिन्हें ब्रह्माजीने छिपा दिया था तथा वे ग्वालबाल, जो स्वयं भगवान् ही बने थे–इन दो प्रकारके ग्वाल–सखाओंमें क्या भेद था ?' तो वास्तवमें तो कोई भेद नहीं है; क्योंकि पहले भी स्वयं श्रीकृष्ण ही उतने ग्वाले बने हुए थे और फिर ब्रह्माजीके ले जानेपर वे ही उतने और बन गये। इतना कहा जा सकता है कि पहलेवाले जो ग्वालसखा थे, उनमें कई साधनसिद्ध भी सखा थे, दूसरी बार ब्रह्माके ले जानेपर जो सखा प्रकट हुए, वे सब–के–सब स्वयं श्रीकृष्ण ही बने थे; सखाओंमें भी नित्यसखा एवं साधनसिद्ध सखा–ये दो भेद तो हैं ही । आज जिसने साधन किया और साधनसे भगवान्की नित्य–लीलामें सम्मिलित हुआ, वह साधनसिद्ध सखा माना जायगा । पर यह मानना भी हमारी–आपकी दृष्टिसे है; श्रीकृष्णकी दृष्टिसे तो स्वयं वे सदासे हैं और सदा रहेंगे।

यही उनकी विलक्षण, मन–बुद्धिसे अत्यन्त परेकी लीला है कि वे ही जीव, वे ही जगत्, वे ही जगत्के मालिक–तीनों बने हुए है; परंतु जबतक हम अपने–आपको अनुभव करते हैं तबतक यह ऊँच–नीचका भेद बना ही रहेगा । इसका रहस्य वाणी एवं मनसे समझा ही नहीं जा सकता ।

शास्त्र एवं संत कहते हैं– जो है, भगवान् है; जो नहीं है, वह भगवान् है; तथा है, नहीं है–इन दोनोंसे परे भी भगवान्का रूप है, जो अनिर्वचनीय है । पर यह स्थिति भी तो वाणीमें आ गयी, इसलिये असली नहीं है। वह इतनी विलक्षण स्थिति है कि कुछ भी कहना नहीं बनता । यही बात दिव्य लीलाके रहस्यमें भी है । देखनेपर ही कोई यत्किंचित् समझ सकता है कि वह क्या वस्तु है ।

सब भगवान् हैं, यही पहली स्थिति है–जो साधनासे प्राप्त होती है और तब फिर असली स्थिति प्राप्त हो जाती है, जो अनिर्वचनीय है ।

बिलकुल कोई वस्तु भगवान्के सिवा है ही नहीं, यह ज्ञान जिसे है, और जिसे नहीं है, वे दोनों भी भगवान् ही बने हुए हैं । पर यह बात कही जाती है कि जबतक सुख–दुःख होता है, अहंकार है, तबतक साधना करो । परंतु यह

अहंकार, यह सुख–दुःख भी उन्हींका रूप है; फिर साधना क्यों करें ? इसीलिये कि प्राणीकी इच्छा है कि मेरा दुःख मिट जाय ।

मेरी राय तो यह है कि मनुष्य सृष्टितत्त्वका, भगवान् के लीला–तत्त्वका निर्णय करने, रहस्य समझनेके फेरमें न पड़कर सरल चित्तसे भगवान्का चिन्तन करे, साधनामें जुट जाय । बाह्य साधनाके अतिरिक्त मानसिक भगवत्सेवाकी साधनामें जुट जाय । नियम बाँध ले कि इतनी–इतनी सेवा तो करनी ही पड़ेगी। यदि यह नहीं हुआ तब तो फिर आज हमारा सबसे खराब दिन बीता । नहीं होनेपर कुछ प्रायश्चित्तका नियम ले ले, तब होगा ।

व्रजप्रेमकी साधनाका जहाँ शास्त्रोंमें वर्णन है, वहाँ यह आता है कि साधकको स्वयं ठीक उसी प्रकारकी देहकी भावना करके चौबीसों घंटे वहीं साथ रहनेका ध्यान करना चाहिये । उसमें नियम बँध जाता है कि यह सेवा हमें करनी है । जैसे मान लें एक सेवा है–हाथ–पैर धुलाना । अब दिनभरमें न जाने कितनी बार इस सेवाका समय आयगा, उस समय तो मनको आना ही पड़ेगा, लगन होनेपर चाहे और सब काम बिगड़े, पर साधक उतनी देरके लिये चाहे बीस सेकंड ही क्यों न हो, सब काम छोड़कर जहाँ बैठा हुआ है, जो कर रहा है, सबको गौण करके ध्यानस्थ हो जायगा । अभ्यास होनेपर लोगोंको पता नहीं चलेगा । लिखते–पढ़ते, बातचीत करते हुए वह मन–ही–मन वहाँकी सेवा करते रह सकता है ।

निरन्तर भगवत्सेवाकी मानसिक भावना करते रहनेसे मनकी क्या अवस्था होती है, यह कुछ इतनी विलक्षण बात है कि मेरा अनुमान है–आपने जो समझा होगा, उससे बिल्कुल नयी बात है । उसकी कल्पना भी अभी नहीं हो सकती कि कैसे क्या–क्या होता है । वह तो केवल वही जान सकता है, जो स्वयं इस ओर पैर बढ़ाये और श्रीकृष्णकी कृपाका आश्रय करके आगे पाँव रखता चला जाय; फिर सारी बात समझमें आती जायगी और बिल्कुल ऐसी अवस्थाका ज्ञान होगा कि वह स्वयं केवल अनुभव कर सकेगा, दूसरोंको समझा नहीं सकेगा।

जैसे भी हो एक बार चेष्टा करके भगवान्की लीलामें मनको अच्छी तरह फँसा दें । जब मन टिकेगा, तब फिर स्वयं नयी–नयी चीजें, नये–नये दृश्य मनके सामने भगवान्की दयासे आने लग जायँगे । फिर यह आवश्यकता नहीं रहेगी कि किसीसे चलकर लीला सुनें । भगवान्की कृपासे स्वयं ऐसी विलक्षण–विलक्षण झाँकी–प्रेमसे भरी हुई झाँकी आयेंगी कि मन आनन्दमें डूबा रहेगा । केवल आप ही उसका आनन्द लेंगे, दूसरेको समझा भी नहीं सकेंगे । भगवान्की कृपा सहायता करेगी । जहाँ चेष्टा करने लगे कि नया–नया कुछ–न–कुछ दृश्य दिखा–दिखाकर वे मनको खींचने लगेंगे । आरम्भिक साधनामें किसी दिन तो

बेगार–सा बड़ा बुरा मालूम होगा; क्योंकि मन भागना चाहेगा । पर यदि लगन रही तो फिर स्वयं मन लगने लग जायगा और फिर यह चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी कि चलो, पन्ना उलटकर लीला पढ़ें; अपने–आप ठीक समयपर वह फिल्मकी तरह माथेमें नाचने लग जायगी । कोई बात करेगा, उसके साथ गौणरूपसे बात भी कर लीजियेगा; पर मन भाग–भागकर वहीं चला जायगा । बिल्कुल ऐसा हो जायगा मानो अपने–आप लीलाकी फिल्म आती चली जा रही हो, एक–पर–एक आती रहेगी । पर प्रारम्भमें थोड़ी साधना करनी पड़ेगी । फिर आगे चलकर सच मानिये, भगवान्‌की कृपासे आपके लिये यह बहुत ही आसान हो जायगा ।

राधे राधे राधे राधे

ललिताम्बामयीं धर्ममातरम्

प्रथम अध्याय

{मातृसाधनाका प्रथम सोपान गुरुवरण}

पूज्य गुरुदेवको जून १९३९ ई० में भगवती आद्याशक्ति अखिललीलाविधातृ महात्रिपुरसुन्दरीके दर्शन श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नीकी दिव्य आकृतिमें स्वप्नमें हुए थे । {जीवनीके प्रथम भागमें गुरुदीक्षा प्रकरणमें इस प्रसंगको विस्तारसे देखें ।} इस दर्शनसे उन्हें यही संकेत मिला था कि उनके भविष्य जीवनका विकास इन भगवती योगमाया त्रिपुराके संरक्षणमें ही होगा ।

वि०सं० २०००–२००१ में भगवान् श्रीकृष्णने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनेका आदेश दिया था ।

वर्त्तमान वैष्णव सम्प्रदायवादी लोगोंकी बुद्धिमें भले ही यह बात नहीं उतरे कि राधाकृष्ण प्रीतिकी रसमयी साधनामें तन्त्र–साधना भी कोई महत्व रखती है, परन्तु परमोच्च पारमार्थिक सत्य यही है कि समस्त अप्राकृत एवं प्राकृत विश्व इन परमोच्च लीलामहाशक्ति त्रिपुरामें ही परिकल्पित हो रहा है। विश्वतंत्रमें कहीं कोई भी सल्लोक, चिल्लोक अथवा परिपूर्ण आनन्दलोक ही क्यों न हो, उन सबकी संचालिका, साथ ही वहाँ जो भी भागवती लीलाएँ संघटित हो रही है, उन समग्र लीलाओंकी सूत्रधार भगवती त्रिपुरा योगमाया ही हैं । फिर पू० गुरुदेवकी तो परम अद्वैत दृष्टि थी । उन्हें तो ये भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही गोलोकमें रसराज श्रीकृष्ण संज्ञक पुरुषरूपमें लीलायमान दृष्टिगोचर होती थीं । वे शक्तिसंगम–तन्त्रका निम्न श्लोक इस विषयमें शास्त्र–प्रमाण मानते थे ।

"कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा ।

ये भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही गोलोकमें श्रीकृष्ण हैं और "एकं ज्योति द्विधा भिन्नं राधामाधव रूपकम्" एक ही प्रकाश दो, भिन्न राधामाधव रूपमें प्रकाशित है, पू० गुरुदेवकी यही सुदृढ़ आत्मनिष्ठा थी ।

अब पू० गुरुदेवके सम्मुख बड़ी समस्या किसी महासिद्ध तांत्रिक सद्‌गुरुकी प्राप्तिकी खड़ी हो गयी। गुरुवरणके बिना तो तंत्र–साधना प्रारंभ करना सर्वथा अपराध माना जाता है ।

"पुस्तके लिखितान् मन्त्रानवलोक्य जपेत्तु यः ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते ।।"

{सांख्यायन तंत्र}

"जो भी व्यक्ति तंत्रशास्त्रकी साधनाके मन्त्र पुस्तकोंमें लिखे पढ़कर जपता है, वह जीवितावस्थामें तो चाण्डालवत् है ही, मृत्युके पश्चात् कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है ।"

इस सांख्यायन तंत्रके वचनानुसार गुरुमुखके बिना यह साधना कैसे प्रारम्भ की जाय ? – इस चिन्तासे पू0 गुरुदेव व्यग्र हो उठे ।

यद्यपि पू0 गुरुदेवकी श्रीपोद्दार महाराज द्वारा रसदीक्षा हो चुकी थी, परन्तु रसदीक्षा एवं तंत्रदीक्षा दो भिन्न–भिन्न स्वतंत्र मार्ग हैं । पू0 गुरुदेवने बहुत चेष्टा की कि दक्षिण तंत्रोपासना करनेवाला कोई गुरु उन्हें तंत्रदीक्षा प्रदान कर दे, परन्तु बात नहीं बनी । गुरुदीक्षाके बिना तंत्रमार्गमें प्रवेश ही संभव नहीं था । अन्ततः पूज्य गुरुदेवने इस समस्याका समाधान भगवान् श्रीकृष्णसे ही पूछा । भगवान श्रीकृष्णने पू0 गुरुदेवको यही आदेश दिया कि "समग्र गुरुतत्वके मूल बीज–उद्गम भगवान् दक्षिणा मूर्ति हैं । ये भगवान् दक्षिणामूर्त्ति भगवान् शिवके विशुद्ध ज्ञानात्मा स्वरूप हैं । अतः भगवान् दक्षिणामूर्त्तिके आदि शंकराचार्य स्वामी द्वारा विरचित स्तोत्रका पाठ कर उन्हें मानसिक भावसे गुरुरूपमें वरण कर लो और तंत्रसाधना प्रारंभ कर दो। साधनाकी सिद्धिके रूपमें भगवती त्रिपुरा स्वयं प्रकट होकर तुम्हें मूल षोडशाक्षरी मंत्र दान करेंगी ।" भगवान् श्रीकृष्णके इस आदेशको पाकर पू0 गुरुदेव परम संतुष्ट हो गये । तंत्र–शास्त्रमें आत्मस्वरूपिणी देवता भगवती त्रिपुरा, उनका षोडशाक्षरी महामन्त्र और उसके उपदेष्टा सिद्धगुरु – इन तीनोंमें अभेद, दृढ भावना करनी परमावश्यक है । भगवान् दक्षिणामूर्त्तिको तंत्रमार्गका गुरुवरण करने पर उन्हें उनके साथ अपनी अभेद भावना करनेमें भी कोई कठिनाई नहीं होनी थी और भगवतीके साथ पूर्ण अभेद प्राप्त करनेमें गुरूकृपा रूपमें यह स्तोत्र स्वतः महासामर्थ्यसे पूर्ण था ।

श्रीसुन्दरीतापनीयमें कहा गया है :–

यथाघटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थ वाचकाः ।
तथा मंत्रो देवता च गुरुश्चैकार्थ वाचकाः ।।

"जैसे घट, कलश और कुम्भ – ये तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं, वैसे ही देवता, मंत्र और गुरु – ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थके वाचक हैं ।

भगवान श्रीकृष्णका आदेश पाकर पूज्य गुरुदेवने भगवान् दक्षिणामूर्तिका निम्नलिखित स्तोत्र उनकी मानसपूजा करके पाठ करना प्रारंभ कर दिया ।

पू० गुरुदेवने मुझे यह रहस्य सन् १९४८ ई० में बताया था । उन दिनों मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचारक–पद त्याग कर पू० गुरुदेवके चरणोंमें समर्पित होने की लालसा लेकर गोरखपुर चला आया था। पू० गुरुदेवके सम्मुख मैंने जब पूर्ण सद्गुरु द्वारा स्वीकार किये जानेका उपाय पूछा तो उन्होंने मुझे इसी स्तोत्रके दस पाठ रोज करनेका नियम दिया था।

इस स्तोत्रके माहात्म्यमें उन्होंने यह भी बताया था कि यह स्तोत्र पाठ करने पर अमोघ रूपसे सच्चे सद्गुरुकी प्राप्ति कराने वाला है । उन्होंने यह भी कहा था कि जो भी तंत्र–साधक सच्चे सद्गुरुके अभावमें भगवान् दक्षिणामूर्त्तिको गुरु–रूपमें वरण कर लेते हैं उन्हें तंत्र साधना करनेमें कोई भी हानि नहीं होती । साधकोंके लाभार्थ भगवान् दक्षिणामूर्त्तिका यह स्तोत्र पदच्छेद, अन्वय एवं हिन्दी अर्थ सहित यहाँ दिया जा रहा है ।

श्रीमदादिशंकरस्वामि–विरचित
श्रीदक्षिणामूर्त्ति स्तोत्रम्

{१}

विश्वं दर्पणदृष्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षीकुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयम्
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।

पदच्छेद

विश्वम्, दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यम्, निजान्तर्गतम्, पश्यन्, आत्मनि, मायया, बहिः इव उद्भूतम्, यथा, निद्रया, यः साक्षीकुरुते, प्रबोधसमये, स्वात्मानम्, एव, अद्वयम्, तस्मै, श्री गुरुमूर्त्तये, नमः, इदम् श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

यथा निद्रया {प्राणी} विश्वं निजान्तर्गतं बहिः उद्भूतं इव पश्यन्, {तथैव} यः आत्मनि मायया {विश्वं} दर्पणदृष्यमान नगरीतुल्यम् {पश्यन्} प्रबोधसमये स्वात्मानं एव अद्वयं साक्षीकुरुते तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः।।

{हिन्दी शब्दार्थ}

जैसे निद्राके समय {स्वप्न कालमें} प्राणी सम्पूर्ण विश्वको अपने भीतर उद्भूत होने पर भी बाहर उत्पन्न हुएके समान देखता है, इसी प्रकार जो अपनी मायाशक्तिके द्वारा विश्वको दर्पणमें जिस प्रकार नगर प्रतिबिम्बित हो रहा हो, इस प्रकार अपने ही संकल्पमें प्रतिबिम्बित देखते हुए समाधिकालमें

अपने आपको ही एकमेव अद्वितीय साक्षीरूपमें अनुभव करते हैं -- उन श्रीगुरुस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमस्कार है ।

{२}

बीजस्यान्तरिवांकुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुनः ।
मायाकल्पितदेशकालकलना वैचित्र्यचित्रीकृतम् ।।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

बीजस्य, अन्तर्, इव अंकुरः, जगत्, इदं, प्राङ्, निर्विकल्पम्, पुनः, मायाकल्पितदेशकालकलना वैचित्र्यचित्रीकृतम, मायावी इव, विजृम्भयति, अपि, महायोगी, इव, यः, स्वेच्छया, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।।

अन्वय

यः इदम् जगत् प्राङ् बीजस्य अन्तरि अंकुरः इव, निर्विकल्पम् पुनः मायावी इव महायोगी इव मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम् स्वेच्छया विजृम्भयति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदम् नमः।।

{हिन्दी शब्दार्थ}

जो इस जगतको जो पहले बीजके अन्तरालमें अंकुर रहता है, इस प्रकार अव्यक्त था, फिर जैसे मायावी जादूगर जादूकी वस्तुओंको उत्पन्न करता है अथवा महायोगी जैसे अपने योगबलसे अपनी योगसृष्टिको जो उसके संकल्पमें रहती है, व्यक्त कर देता है इस प्रकार जो अपनी माया द्वारा देशकाल एवं कलाओंसे युक्त अनेक आश्चर्यजनक विचित्रताओंके रूपमें अपनेको ही संकल्पसे प्रकाशित कर देते हैं, उन श्रीगुरुमूर्त्तिके रूपमें प्रकट भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमस्कार है ।

{३}

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते ।
साक्षात्तत्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

यस्य, एव, स्फुरणम् सदात्मकम्, असत्कल्पार्थकम्, भासते, साक्षात्, तत्वम्, असि, इति, वेदवचसा, यः, बोधयति, आश्रितान्, यत्, साक्षात्करणात्, भवेत्, न, पुनरावृत्तिः, भवाम्भोनिधौ, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्,

श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

यस्य सदात्मकम् स्फुरणम् एव असत्कल्पार्थकम् जगत् भासते यः आश्रितान्, साक्षात् तत् त्वम् असि इति वेदवचसा बोधयति यत् साक्षात् करणात् भवाम्भोनिधौ न पुनरावृत्तिः भवेत् तस्मै श्रीगुरु मूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदम् नमः।

हिन्दी शब्दार्थ

जिनके सत्य आत्मस्वरूपके स्फुरण मात्रसे ही यह असत्, मिथ्या एवं नाशमान् मात्र कल्पित प्रयोजनोंसे निर्मित जगत् प्रकाशित हो रहा है । जो अपने आश्रित जनोंको तुम साक्षात् वह परमात्मा ही हो, इस प्रकार वेद वाणीका उपदेश करते हैं, जिसके अनुभव रूप ज्ञान हो जानेपर इस भवसागरमें पुनः आगमन कदापि नहीं होता उन श्रीगुरुमूर्त्ति भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमन है ।

{४}

नानाछिद्र घटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरम्
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

नानाछिद्रघटोदर स्थित महादीपप्रभाभास्वरम्, ज्ञानम्, यस्य, तु, चक्षुः, आदि, करण, द्वारा, बहिः, स्पन्दते। जानामि, इति, तम्, एव, भान्तम्, अनुभाति, एतत्, समस्तम्, जगत्, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

नानाछिद्र घटोदर स्थित महादीप प्रभाभास्वरं यस्य ज्ञानं तु चक्षुः आदि करण द्वारा एतत् समस्तं जगत् बहिः स्पन्दते । एवं तम् जानामीति भान्तं एव एतत् समस्तं जगत् अनुभाति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।

हिन्दी शब्दार्थ

जैसे एक बहुत बडे घड़ेके भीतर जिसमें अनेक छिद्र हैं तथा भीतर दीपक रखे होनेसे छिद्रोंके द्वारा अनेक रूपोंमें प्रकाश निकलता रहता है उसी प्रकार जिनका ज्ञान ही कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका आदि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक इस समस्त जगत्के रूपमें बाहर स्पन्दित होता है एवं उन दक्षिणःमूर्त्ति भगवानके "मैं जानता हूँ"

इस प्रकारके ज्ञानके प्रकाशित होनेसे ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है। उन श्रीगुरुतत्वस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्तिके लिये यह मेरा नमन है ।

{५}

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः ।
स्त्रीबालान्धजड़ोपमास्त्वहमिति भ्रान्ताः भृशं वादिनः।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

देहम्, प्राणम्, अपि, इन्द्रियाणि, अपि, चलाम्, बुद्धिम्, च, शून्यम्, विदुः, स्त्रीबालान्धजड़ोपमाः, तु, अहम्, इति, भ्रान्ताः भृशम्, वादिनः, मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे, तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

भृशंवादिनः भ्रान्ताः स्त्रीबालान्धजड़ोपमाः तु अहम् देहम् प्राणम् अपि इन्दियाणि अपि चलाम् बुद्धिं च एवं शून्यं विदुः तस्मै मायाशक्ति–विलास–कल्पित–महा–व्यामोह–संहारिणे श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः।

हिन्दी शब्दार्थ

बहुत बुद्धिमान बनकर नाना प्रकारके ज्ञान बघारने वाले मायाभ्रममें फँसे लोग जो स्त्रियों, बालकों, अन्धे व्यक्तियों एवं जड़ वस्तुओंकी उपमाके योग्य हैं, वास्तवमें मैं देह हूँ, प्राण हूँ इन्द्रियाँ भी हूँ एवं अति चचंल बुद्धि हूँ, साथ ही शून्य प्रकृति हूँ, ऐसा जानते हैं । यह माया–शक्ति–विलाससे कल्पित जो व्यामोह है, उसे सम्यक् प्रकारसे नाशकरनेवाले श्रीगुरुमूर्त्ति भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमन है ।

{६}

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान् ।।

प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशः, मायासमाच्छादनात्, सन्मात्रः,

करणोपसंहरणतः, यः, अभूत्, सुषुप्तः पुमान्। प्राग्, अस्वाप्सम्, इति, प्रबोधसमये, यः, प्रत्यभिज्ञायते, तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।

अन्वय

यः सन्मात्रः राहुग्रस्तदिवाकरेन्दु सदृशः मायासमाच्छादनात् यः सुषुप्तः पुमान् करणोपसंहरणतः अभूत्। प्रबोधसमये प्राक् अस्वाप्सम् इति प्रत्यभिज्ञायते तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदम् नमः ।

हिन्दी शब्दार्थ

जो सत्तामात्र हैं {परन्तु} राहुद्वारा ग्रस्त चन्द्रमा एवं सूर्यकी तरह मायासे सम्यक् प्रकारसे ढके हुए हैं तथा जो सोयेहुए पुरुषमें समस्त इन्द्रियोंके उपसंहार होने पर भी शेष रहते हैं एवं जाग्रत् होने पर पहले मैं सोया था, इस प्रकार विचार करते हैं उन श्रीगुरुरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिको यह मेरा नमन है ।

{७}

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवृत्तमानमहमित्यन्तस्फुरन्तं सदा ।।
स्वात्मानंप्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

बाल्यादिषु, अपि, जाग्रत्, आदिषु, तथा सर्वासु, अवस्थासु, अपि, व्यावृत्तासु, अनुवृत्तमानम्, अहम्, इति, अन्तस्फुरन्तम्, सदा, स्वात्मानम्, प्रकटीकरोति, भजताम्, यः, मुद्रया, भद्रया, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः इदं, श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।

अन्वय

यः बाल्यादिषु जाग्रदादिषु सर्वेषु अवस्थास्वपि व्यावृत्तासु अनुवृत्तमानम् अहम् इति सदा अन्तःस्फुरन्तं यः भजताम् स्वात्मानम् भद्रया मुद्रया प्रकटीकरोति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।

हिन्दी शब्दार्थ

जो बालकपन, जवानी एवं बुढापा आदि परिवर्तनशील वयोंमें, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयादि सभी अवस्थाओंमें भी व्यावृत्त एवं अनुवृत्त होते हुए भी "मैं हूँ" – इस प्रकार सदैव अखण्ड एकरस अन्तःकरणमें स्फुरण कराते रहते हैं, जो भजन करनेवाले अपने शिष्योंके सम्मुख अपने आपको भद्र मुद्राके द्वारा प्रकट करते हैं, उन श्रीगुरुमूर्त्ति श्रीदक्षिणामूर्त्ति भगवान्को

मेरा नमन है ।

{८}

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामि सम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मनाभेदतः ।।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामितः
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

विश्वम् ,पश्यति, कार्यकारणतया, स्वस्वामिसम्बन्धतः, शिष्याचार्यतया तथा, एव, पितृपुत्रादि आत्मना भेदतः, स्वप्ने, जाग्रति, वा, यः, एषः पुरुषः, मायापरिभ्रामितः, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

यः एषः पुरुषः मायापरिभ्रामितः स्वप्ने जाग्रति विश्वं कार्यकारणतया स्वस्वामि सम्बन्धतः शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मनः भेदतः पश्यति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।।

हिन्दी शब्दार्थ

जो साक्षात् परम पुरुषोत्तम होते हुए अपनी मायाके प्रवाहमें परिभ्रमित हुए स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्थामें इस विश्वको कार्य एवं कारणके, शिष्य एवं आचार्यके, इसी प्रकार पिता पुत्र आदि अनेक आत्म भेदोंके रूपमें देखते हैं उन श्रीगुरुमूर्त्तिस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिको यह मेरा नमस्कार है ।

{९}

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोम्बरमहर्नाथोहिमांशुःपुमान्
इत्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम् ।।
नान्यत् किंचन विद्यते विमृशतां यस्माद् परस्माद्विभो
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

भूः, अम्भांसि, अनलः, अनिलः, अम्बरः, महर्नाथः, हिमांशुः, पुमान् इति आभाति चराचरात्मकम्, इदम्, यस्य, एव मूर्त्तिः, अष्टकम्, न, अन्यत्, किञ्चन, विद्यते, विमृशताम् यस्मात्, परस्मात्, विभो, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

अन्वय

यस्य भूः, अम्भांसि, अनलः, अनिलः, अम्बरः, महर्नाथः हिमांशुः पुमान्, इति अष्टकम् मूर्त्तिः एव इदं चराचरात्मकम् {विश्वं} आभाति । विमृशतां